ग्रामीण पाठकों के लिए

कहानी जवाहरलाल की

देसराज गोयल
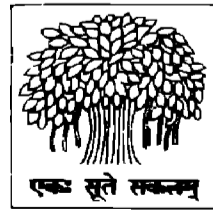
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

1. बचपन

"पूत के पांव पालने में ही दिख जाते हैं।"
"जोई हाथ पालने झुलावे, सोई आगे राज करावै।"

कौन कैसा बनता है यह बहुत हद तक बचपन तय करता है। इसीलिए हर कहानी, हर जीवन कथा, नायक के जन्म से प्रारंभ होती है। हमारे नायक जवाहरलाल का जन्म 14 नवंबर 1889 को हुआ था। उनके पिता मोतीलाल नेहरू इलाहाबाद के जाने माने वकील थे। अच्छा खाने, अच्छा पहनने, बढ़िया घर में रहने के वे शौकीन थे। उन्हें अपने आप पर बेहद भरोसा और अपनी सफलता पर गर्व था।

बालक जवाहरलाल के साथी तो उनके अपने ही विचार थे। आस-पास जो कुछ होता था उसका उनपर गहरा असर पड़ता था। जो कुछ देखते सुनते थे उसकी गहरी छाप पड़ती थी। उनके बाल मन पर उनके पिता के जीवन, माता की सरलता और मुंशी मुबारक अली की बातों का गहरा प्रभाव था। शहर के किनारे बहती गंगा नदी के साथ उनका अटूट नाता बन गया। बड़े भाइयों की आपसी चर्चा से उनको अंग्रेज शासकों के बुरे व्यवहार का पता चला। इन सबके रंग चढ़े जवाहरलाल के जीवन पर।

मोतीलाल जी अंग्रेजों की बराबरी करने के लिए अपना जीवन उन जैसा बना रहे थे। वह अपने पुत्र को भी उसी रंग में रंगना चाहते थे। इसीलिए उनको घर पर पढ़ाने के लिए अंग्रेज शिक्षक रखे। उनको अच्छी

अंग्रेजी और अंग्रेजों जैसे रहन सहन के ढंग सिखाने का प्रबंध किया। किंतु जवाहरलाल के मन में कुछ और लहरें भी उठ रही थीं।

मोतीलाल जी के एक मुंशी थे मुबारक अली। अंग्रेजों ने 1857 में उनके पिता की हत्या उनकी माता के सामने कर दी थी। जवाहरलाल उनसे बहुत बातें किया करते थे। उन्होंने बालक को अपनी दुख भरी कहानी सुनाई। सन 1857 में जो और अत्याचार हुए थे, उनका वर्णन भी किया। किस प्रकार लोगों को दिल्ली छोड़नी पड़ी, कैसे उनको लूटा गया और कैसे सैकड़ों लोगों को पेड़ों से लटका कर फांसी दी गई।

ऐसा ही जवाहरलाल के परिवार के साथ भी बीता था। यह बात उन्होंने अपने परिवार से सुनी थी। उनका परिवार 18वीं शताब्दी में कश्मीर से दिल्ली आया था। सन 1857 में उनके दादा गंगाधर नेहरू दिल्ली के कोतवाल थे। बहादुरशाह को पराजित करके अंग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा किया तो उनको दिल्ली छोड़नी पड़ी थी। घर-बार छोड़कर वह जान बचाकर भागे थे। दिल्ली से आगरा जाते हुए एक और विपदा आन पड़ी। उनके पुत्र नंदलाल के साथ उनकी बेटी थी। कश्मीरी लड़कियों जैसी सुंदर और गोरी चिट्टी। रास्ते में गोरे सिपाही मिले। उन्होंने समझा वह लड़की अंग्रेज है और ये लोग उसे भगा ले जा रहे हैं। नंदलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने बहुत कहा कि वह उनकी अपनी बेटी है। लेकिन सिपाही उनकी बात मानने को तैयार न हुए। उस समय के बरताव के अनुसार उनको फांसी देने का प्रबंध करने लगे। इतने में वहां उनके एक जानने वाले सज्जन आ गए। उनकी गवाही पर जवाहरलाल के ताऊ की जान बची।

मुंशी मुबारक अली के परिवार की कहानी जवाहरलाल को अपने परिवार की कहानी लगी। उनका मन अंग्रेजी शासन के प्रति क्रोध से भर गया। इस आंच को हवा उनके चचेरे भाइयों की बातों से भी मिली।

वे लोग अंग्रेजों के व्यवहार को बहुत बुरा मानते थे । जहां कहीं अंग्रेज काम करते थे, भारतीयों को घटिया समझते थे । रेलगाड़ियों में उनके लिए आरक्षित डिब्बों में भारतीय सवार नहीं हो सकते थे । अंग्रेज जिस डिब्बे में चाहते घुस जाते, चाहे आरक्षित हो या नहीं । फिर वहां किसी भारतीय को घुसने नहीं देते ।

इस प्रकार बालक जवाहरलाल के मन में देश के प्रति प्रेम और विदेशी शासकों के प्रति घृणा पैदा हो गई । परंतु घृणा, क्रोध और विरोध केवल शासन के विरुद्ध था, न कि अंग्रेजों के प्रति । उन्होंने अपने घर में जिन अंग्रेजों को देखा वे अच्छे लोग थे । उनके पिता का आदर करते थे । जवाहरलाल के जो शिक्षक थे, उनके विचार भी बहुत अच्छे थे । इस प्रकार जवाहरलाल के बचपन के संस्कारों में अपने देश से प्रेम बना लेकिन दूसरों से घृणा नहीं । उनके मन में विरोध था तो उन विचारों का था जो दूसरे लोगों को नीचा समझते थे और नीचा दिखाते थे । किसी व्यक्ति या जाति का विरोध उनके मन में नहीं आता था ।

पंद्रह वर्ष की आयु तक जवाहरलाल वहीं आनंद भवन में रहे । मोतीलाल जी उनको ऊंची से ऊंची शिक्षा दिलाना चाहते थे । वह खुद किसी से कम नहीं थे । चाहते थे कि बेटा भी किसी से कम न हो । इसलिए उनको विलायत ले गए। बरतानियों में हैरो सबसे अच्छा स्कूल माना जाता था । राजघराने के लड़के उसमें पढ़ते थे । जवाहरलाल को भी वहां दाखिल कर दिया गया ।

हैरो स्कूल जवाहरलाल को भी अच्छा लगा । लेकिन वहां के लड़कों के तौर तरीके उनको पसंद नहीं थे । अधिकतर विद्यार्थी खेलकूद में मस्त रहते थे । पढ़ाई उतनी ही करते जितनी जरूरी थी । बाहर के संसार में क्या हो रहा है इसके बारे में नहीं सोचते थे ।

जवाहरलाल उनसे अलग थे । उनको समाचारपत्र पढ़ने में रुचि थी ।

जानना चाहते थे आसपास क्या हो रहा है। भारत में क्या हो रहा है? बरतानिया में क्या हो रहा है?

उन दिनों बरतानिया में चुनाव हुए। एक दिन स्कूल में शिक्षक ने विद्यार्थियों से पूछा, "चुनाव में किसकी जीत हुई?" उस प्रश्न का उत्तर केवल जवाहरलाल ने दिया। यह भी बता दिया कि प्रधानमंत्री कौन बने। मंत्रियों के नाम भी गिना दिए।

विदेश में भी जवाहरलाल को भारत का सदा ध्यान रहता था। देश में क्या हो रहा है, यह जानने की उनकी चाह कभी कम नहीं हुई। उनके शिक्षक भी उनको अच्छा समझते थे।

राजनीति में भाग लेना तय नहीं था। परंतु जानने और समझने की इच्छा थी। बरतानिया के समाचारपत्रों में भारत की जानकारी कम मिलती थी। यह कमी पूरी करने में मोतीलाल जी उनके सहायक थे। हर सप्ताह उनको पत्र लिखते। उसमें भारत की बड़ी बड़ी घटनाओं का वर्णन होता। राजनीति का विवरण भी देते। लिखते कौन नेता क्या कर रहा है। समाचारपत्र भी भारत से उनको भेज देते।

इस तरह बैठे बैठे उनको राजनीति की जानकारी मिली। लोकमान्य तिलक का गर्म दल कांग्रेस से अलग हुआ। जवाहरलाल को इनके विचार अधिक प्रिय थे। मोतीलाल जी नरम दल में थे। यह बात बेटे को पसंद नहीं थी। अपने पत्रों में उन्होंने यह बात साफ साफ लिख दी। उन दिनों उन्होंने इटली के राष्ट्रवादी नेता गैरीबाल्डी की जीवनी पढ़ी। वह उससे बहुत प्रभावित हुए और सपने लेने लगे कि स्वयं भी अपने देश की आजादी के लिए वैसे ही संघर्ष करेंगे।

उनके स्कूल हैरो में विद्यार्थी समाज के बारे में नहीं सोचते थे। इसलिए जवाहरलाल अपने को अकेला पाते थे। शीघ्र ही वह हैरो से ऊब गए। वह विश्वविद्यालय में जाना चाहते थे। उन्होंने कैंब्रिज में प्रवेश

ले लिया। वहां के विद्यार्थी हैरो वालों से भिन्न थे। उनमें बहुत से भारतीय भी थे। उन्होंने मजलिस नाम की संस्था बना रखी थी। जवाहरलाल वहां की बातचीत में भाग लेते थे। नए विचार सुनते और पढ़ते। अभी राजनीति के मैदान में जाने का विचार नहीं बना था। इसलिए बोलते नहीं थे। केवल सुनते थे।

अपने बारे में जवाहरलाल ने लिखा है कि वह बोलने में झिझकते थे। झिझक का कारण शायद यह था कि वह जो बोलते, वही करना भी चाहते थे। करना क्या है यह अभी तय नहीं हुआ था।

विश्वविद्यालय में जवाहरलाल ने विज्ञान के विषयों का अध्ययन किया। उसमें वह पास तो हुए लेकिन अधिक ध्यान समाज संबंधी विचारों पर रहा। राजनीति, अर्थ शास्त्र, समाज शास्त्र को समझने का, प्रयास किया। उस समय जो नए विचार उभर रहे थे उनकी जानकारी गहराई में ली। पुस्तकें भी पढ़ीं, चर्चाएं भी सुनीं। भारत से जो नेता वहां जाते थे उनकी सभाओं में जाते। उनको वह भाषण अधिक पसंद आता जिसमें जोश कम दलील अधिक होती।

भारत की राजनीति में अभी पूर्ण आजादी की मांग नहीं उभरी थी। भारत के अधिकतर विद्यार्थी आई. सी. एस. की तैयारी करते थे। यह ऊंची सरकारी नौकरी पाने के लिए परीक्षा थी। जवाहरलाल के सामने भी यह सवाल आया। मगर उन्होंने नौकरी का रास्ता नहीं पकड़ा।

विलायत में पढ़ाई पूरी करके जवाहरलाल भारत लौटे। ऊंची से ऊंची अदालत में वकालत के योग्य थे। ज्ञान और विज्ञान के बारे में पुराने और नए विचारों का संगम बन चुके थे। जहां तक किताबी ज्ञान का संबंध है कोई कमी नहीं थी। लेकिन जीवन की कठिनाइयों से परिचय कम था। अपने देश और देशवासियों के लिए कुछ करने की चाह थी। उसके लिए क्या किया जाए? इस प्रश्न का उत्तर उनके मन में साफ नहीं

था।

इस कामना को पूरा करने के लिए राजनीति का मार्ग था। राजनीति उन दिनों ठंडी थी। कांग्रेस नरम दल वालों के हाथ में थी। वह अंग्रेज सरकार के साथ सहयोग करके सुविधाएं लेना चाहते थे। गरम दल वाले कांग्रेस से अलग कर दिए गए थे। वे दमन का शिकार थे। कुछ कर नहीं पा रहे थे। देश के नौजवानों में बेचैनी थी। समझ में नहीं आ रहा था क्या करें। जवाहरलाल नौजवान थे। केवल बातों से संतोष नहीं मिलता था। विलायत में थे तो जवाहरलाल को तिलक की राजनीति अच्छी लगती थी। बंग-भंग विरोधी आंदोलन भी प्रभावित करता था। राजनीति वैसी नहीं थी। इसलिए उसमें कूदने को मन नहीं किया।

उनके अपने जीवन की एक बड़ी घटना भी उन दिनों घटी। माता पिता उनकी शादी की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने दिल्ली के एक कश्मीरी परिवार की लड़की कमला पसंद कर रखी थी। लौटने पर जवाहरलाल की सगाई उससे कर दी गई। चार वर्ष बाद शादी हुई। शादी करके उन्होंने माता पिता की इच्छा पूरी की।

राजनीति में प्रवेश : गांधी का जादू

पहली बड़ी लड़ाई के चलते भारत की राजनीति ठंडी रही। लड़ाई का सीधा प्रभाव जनता के जीवन पर नहीं था। उद्योग व्यापार में लगे लोगों की कमाई बढ़ गयी थी। साधारण लोग सरकार का विरोध करने से डरते थे। किंतु यह वातावरण घुटन का वातावरण था। शांति का नहीं था। वैसा ही था जैसे तूफान से पहले होता है।

अंग्रेज सरकार ने बढ़ते हुए असंतोष और आक्रोश को दबाना चाहा।

उसके लिए एक्ट (अधिनियम) बनाया । उसके अनुसार किसी को भी पकड़कर बिना मुकदमा चलाए जेल में डाला जा सकता था । उस एक्ट का नाम था रौलेट एक्ट । इससे लोगों में क्रोध की चिंगारी और भड़की ।

इन हालात में गांधी जी भारतीय राजनीति में उभरे । उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सरकारी दमन और रंगभेद नीति के विरोध में संघर्ष की अगुवाई की थी । बिना हिंसा संघर्ष का नया मार्ग दिखाया था । उनके काम से भारतीय नेता भी प्रभावित थे । वह भी राजनीति में काम पर अधिक बल देते थे । रौलेट एक्ट जब बन रहा था तो वह बीमार थे । अपनी रोग शैया से उन्होंने वायसराय को पत्र लिखा । निवेदन किया कि रौलेट एक्ट को स्वीकार न करें ।

गांधी जी ने लड़ाई के दिनों में सरकार को बहुत सहयोग दिया था । वह सोचते थे न्याय पाने में कठिनाई नहीं होगी । जो लोग गांधी जी को जानते थे वह भी ऐसा ही सोचते थे । परंतु गांधी जी की बात नहीं मानी गई । उस अन्यायपूर्ण एक्ट को वायसराय की मान्यता मिल गई ।

गांधी जी सरकार से टकराना नहीं चाहते थे । साथ ही अन्याय सहन करना पाप समझते थे । इसलिए संघर्ष का बिगुल बजा दिया । इसके लिए पहले वह राजकोट, अहमदाबाद तथा चंपारण में सफल संघर्ष कर चुके थे। परंतु यह उनका पहला देशव्यापी आंदोलन था। उन्होंने सत्याग्रह सभा बनाई । उसके सदस्य भरती किये जाने लगे । हर सदस्य को रौलेट एक्ट न मानने का प्रण करना था । यह भी प्रण करना था कि वह ऐसे किसी भी कानून का पालन नहीं करेंगे । इसका अर्थ था लोग एक्ट तोड़ेंगे और जेल जाएंगे ।

अन्याय के विरोध के लिए गांधीजी ने यह मार्ग निकाला था । इसने जवाहरलाल के दिल को छू लिया । उनको लगा कि उनको वह मार्ग मिल गया जिसे वह ढूंढ़ रहे थे । वह तुरंत सत्याग्रह सभा में शामिल होना चाहते थे ।

देश के हालात ऐसे बदले कि सत्याग्रह सभा का काम बंद कर देना पड़ा। सत्याग्रह के दिन पुलिस और फौज ने दमन की हद कर दी। कई शहरों में गोली चलाई गई। अमृतसर में तो अत्याचार सब सीमाएं तोड़ गया। सभा के लिए लोग जालियांवाला बाग में इकट्ठे हुए थे। वह मैदान चारों ओर मकानों से घिरा था। आना जाना एक छोटी-सी गली में से होता था। अंग्रेज अफसर जनरल डायर ने गली के नाके से उस भीड़ पर गोलीबारी कर दी। सैकड़ों लोग मारे गए। चारों ओर हाहाकार मच गया।

मार्शल ला उठाया गया तो कांग्रेस के नेताओं ने दो काम आरंभ किए। एक तो पंजाब के पीड़ितों के लिए सहायता कोष जमा करने का, दूसरे जलियांवाला बाग की घटना की जांच करने का। जवाहरलाल ने दोनों कामों में सहायता दी।

इलाहाबाद की सेवा समिति ने एक लाख रुपया इकट्ठा किया। जवाहरलाल अपने साथ स्वयं सेवकों का जत्था लेकर सहायता कार्य के लिए पंजाब गए। अमृतसर कांड की जांच के लिए वह सी. आर. दास के सहायक के रूप में काम करते रहे।

विदेशी साम्राज्य के द्वारा दमन के बारे में जवाहरलाल ने पढ़ा ही था। अमृतसर में पहली बार उसका ठोस रूप देखा। उनके मन से अंग्रेजों का आदर उठ गया।

उन्हीं दिनों एक और प्रश्न ने देश को हिला दिया। वह प्रश्न था खिलाफत का। दूसरी लड़ाई में तुर्की ने अंग्रेजों का साथ नहीं दिया था। इसीलिए बरतानिया तथा उसके सहयोगी देशों ने तुर्की के साम्राज्य को तोड़ने का षड्यंत्र रचा। अनेक राज्यों में तुर्की के खलीफा के विरुद्ध विद्रोह करवा दिया। तुर्की के खलीफा को उन दिनों सारे संसार के मुसलमान अपना नेता मानते थे। उसके विरुद्ध बगावत करवाने वालों को उन्होंने अपना शत्रु समझा।

खलीफा के विरुद्ध षड्यंत्र धर्म भाव से नहीं बल्कि एशियाई देशों पर गुलामी की जंजीरों को मजबूत करने के लिए रचा गया। उसका विरोध देश की आजादी के संघर्ष का हिस्सा था।

जवाहरलाल अब पूरी तरह गांधी जी के साथ थे। वह इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी के उप-प्रधान हो गए थे। इलाहाबाद में खिलाफत आंदोलन खूब जोर से चला। खिलाफत कमेटी की बैठकें उनके घर आनंद भवन में ही होती थीं। इस आंदोलन में जवाहरलाल को एक अनुभव और हुआ। मुस्लिम लीग के नेता इसमें भाग लेने से घबराते थे। वह नेता बड़े बड़े जमींदार थे। अंग्रेजों से मित्रता रखना चाहते थे। विरोधी आंदोलन से दूर हट गए। जवाहरलाल ने देखा कि धर्म के नाम पर राजनीति करने वाले कितने थोथे होते हैं।

गांधी जी ने खिलाफत आंदोलन के समर्थन में एक शर्त रखी। आंदोलन अहिंसा की सीमा में रहेगा। उन्होंने इसे मानकर अहिंसा और असहयोग का मार्ग अपना लिया। जवाहरलाल को यह बात भी अच्छी लगी। गांधी जी का मार्ग अपनाने वालों का दायरा बढ़ रहा था।

असहयोग का अर्थ था सरकार के किसी भी काम में सहयोग न करना। वकीलों से वकालत छोड़ने को कहा गया। जिनको सरकारी उपाधियां मिली थीं, उनसे उपाधियां लौटाने को कहा गया। रवींद्रनाथ टैगोर ने 'सर' की उपाधि लौटाई। विद्यार्थी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों से निकले। उनके लिए शिक्षा का विशेष प्रबंध किया गया। बहुत से राष्ट्रीय विद्यालय और विश्वविद्यालय खोले गए। यह सब गांधी जी का जादू था। जवाहरलाल जी का विश्वास गांधी जी पर और भी दृढ़ हो गया।

असहयोग का अर्थ यह भी था कि लोग विधान सभा में नहीं जाएं। मोतीलाल जी कांग्रेस के प्रधान थे। वह समझते थे कांग्रेसी गांधी जी

की इस बात को नहीं मानेंगे । उन्होंने आने वाले असेम्बली चुनावों की तैयारी आरंभ कर दी ।

उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की बैठक मोतीलाल के घर पर हुई । जवाहरलाल ने विधान सभाओं में जाने का डटकर विरोध किया । वह तो चुनाव लड़ने को भी सहयोग समझते थे । परंतु समझौता कर लिया । समझौता हुआ कि चुनाव लड़ा जाए और फिर विधान सभा का बायकाट कर दिया जाए । जवाहरलाल का पक्का विचार था कि असहयोग द्वारा ही आजादी का संघर्ष सफल होगा ।

इस नीति का अर्थ कुछ और भी था । मोतीलाल और जवाहरलाल को वकालत छोड़नी पड़ती । यह बात मोतीलाल को बहुत अखरी । जवाहरलाल ने इन बातों की चिंता नहीं की । राजनीति में पूरी लगन से काम करने लगे । एक बार जब जवाहरलाल मसूरी में थे । वहां कुछ अफगान लोग आए हुए थे । सरकार को भय था कि जवाहरलाल भारत-अफगानिस्तान सहयोग से खिलाफत आंदोलन तेज करना चाहते हैं । जवाहरलाल को अफगानों के बारे में कुछ पता नहीं था । सरकार की ओर से वारंट आया । कहा गया, 'लिखकर दो, अफगानों से नहीं मिलोगे ।' जवाहरलाल ने लिखकर नहीं दिया और मसूरी से लौट आए ।

असली भारत के दर्शन

यह सरकारी अन्याय था । इसे सहन करना जवाहरलाल के स्वभाव के खिलाफ था । मगर मसूरी से इलाहाबाद आना एक तरह अच्छा ही हुआ । जवाहरलाल को असली भारत के दर्शन का अवसर मिला ।

भारत किसानों का देश है । इसका असली रूप देहात में मिलता है ।

उन दिनों किसानों का जीवन दुखों से भरा था। वे गरीबी, बीमारी और अनपढ़ता का शिकार थे। आज भी हालत बहुत अच्छी नहीं। परंतु तब और अब में बहुत अंतर है। दुख दूर तो नहीं हुए कम जरूर हो गए।

जवाहरलाल ने पढ़ा था लोग गरीब हैं। गरीबी कैसी होती है यह कभी नहीं देखा था। बड़े वकील के इकलौते बेटे को इसका कैसे पता चलता ? वह तो राजकुमारों की तरह पला था।

मसूरी से इलाहाबाद आए तो उनको यह अवसर मिला। उनको पता लगा कि पास के जिले प्रतापगढ़ के लगभग 200 किसानों का जत्था जमुना के घाट पर बैठा था। अपने कुछ साथियों को साथ लेकर जवाहरलाल उनसे मिलने आए। उनके दुख दर्द की कहानी सुनी। उन लोगों ने विनती की, "सरकार आप हमारे साथ चलें। वहां चलकर जांच करें कैसा अन्याय हो रहा है। आप नहीं चलेंगे तो तालुकदार बहुत जुल्म करेंगे। वह खफा हैं हम लोग यहां क्यों आए। बदला लेंगे हमसे।"

जवाहरलाल ने उन्हें आने का वचन दिया। दो-तीन दिन के बाद अपने कुछ साथियों को लेकर उस गांव में गए। वहां न रेल जाती थी न पक्की सड़क थी। घूमना या पैदल होता था या बैलगाड़ी से। गांधी जी बताया करते थे असली भारत गांवों में है। दो-तीन गांवों में घूमकर जवाहरलाल को गांधी जी की सचाई का अनुभव हुआ। उन्होंने लिखा है कि वहां घूमने से उनकी आंखें खुल गईं।

जवाहरलाल ने भारत का एक नया चित्र वहां पर देखा। नंगे-भूखे, कुचले हुए गरीब भारत का चित्र। यह सब देखकर उनको अपने सुखी जीवन पर शर्म आई। शहर के लोगों की छोटी राजनीति पर खीझ आई।

उन किसानों ने भी स्वराज की बात सुनी थी। वह समझते थे स्वराज से उनके दुख दूर होंगे। इसीलिए गांधी जी के आंदोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। गांवों के अंदर नयी चेतना आई। किसानों का आंदोलन

फैलने लगा। किसानों के बीच जाकर जवाहरलाल ने जाना कि गांधी जी इस भारत को कितना समझते हैं।

वह उन गांवों में तीन दिन तक घूमे। जून का महीना था। गरमी पूरे जोर पर थी। सिर पर तौलिया बांधकर घूमते रहे। बिना धूप, लू, गरमी की चिंता किए। उनमें एक नया जीवन आ गया।

उससे पहले जवाहरलाल को भाषण करने में झिझक होती थी। खासकर हिंदुस्तानी में बोलने से। गांवों में घूमते हुए जवाहरलाल बेखटके उनकी भाषा में बोलने लगे।

किसान आंदोलन का असर भी हुआ। एक्ट में सुधार हुए। यह सुधार ऐसे तो नहीं थे जिनपर पूरा संतोष किया जाए। तो भी कुछ राहत तो मिली। किसानों का भय दूर हुआ। अपने आप पर भरोसा बढ़ा। पुलिस और जमींदार का भय कम हुआ। किसी किसान को खेत से बेदखल किया ज़ाता तो दूसरा उस खेत को जोतने के लिए आगे न आता। जमींदारों के गुमाश्तों और पुलिस के दमन में कमी आई। कहीं जुल्म होता तो शोर मचता। जांच करने की मांग की जाती। वातावरण बदलने लगा।

इस यात्रा के बाद जवाहरलाल ने गांवों का साथ नहीं छोड़ा। गांव में जाकर किसानों का साथ देना कांग्रेस वालों के काम का हिस्सा बन गया। असहयोग आंदोलन और किसान आंदोलन एक हो गए। इसका फल बहुत अच्छा हुआ। अहिंसा आपस के संबंधों का हिस्सा बनने लगी। गांधी का संदेश देश के कोने कोने में पहुंच रहा था। चारों ओर गांधी जी की जय और 'हिंदू-मुसलमान' की जय के नारे लग रहे थे। लोग आजादी के दीवाने हो रहे थे।

1921 के अंतिम दिनों में यह लहर और भी जोर पकड़ गई। बरतानिया के युवराज भारत आ रहे थे। कांग्रेस ने उनका बायकाट करने

का निर्णय किया। सरकार दमन पर उतर आई। बंगाल में कांग्रेस सेवादल को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। ऐसी ही घोषणा उत्तर प्रदेश में भी हुई।

यह असहयोग आंदोलन की चरम सीमा थी। सरकार इसको दबाना चाहती थी। कांग्रेस के नेता पकड़े गए। मोतीलाल और जवाहरलाल दोनों पकड़े गए। सरकार आतंक फैलाना चाहती थी। असर उलटा हुआ। जो लोग कभी आंदोलन में नहीं आए थे वह भी जेल जाने लगे।

अधिकारियों के लिए कांग्रेस वाले नयी तरह के कैदी थी। उनके साथ दूसरे कैदियों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता था। ये कैदी न दब्बू थे न डरने वाले। बाहर बढ़ते हुए आंदोलन से उनका जोश और साहस बहुत बढ़ गए थे।

इन कैदियों को जेल में विशेष सुविधाएं दी गईं। आपस में मिलने जुलने पर कोई रोक नहीं लगाई गई। बाहर से समाचारपत्र भी मंगवा सकते थे। मिलने वाली असानी से आ सकते थे।

जवाहरलाल सवेरे उठकर अपनी बैठक साफ करते। अपने और मोतीलाल जी के कपड़े धोते। कुछ समय चरखा कातने में बिताते। धनी वकील मोतीलाल का लाडला कर्मठ कार्यकर्ता बनने लगा। राजसी रंग उतार कर गांधी का सादा जीवन अपना लिया।

बेचैनी और परेशानियां

जवाहरलाल जेल से छूटे तो उनका मन अशांत था। चौरी-चौरा कांड के बाद गांधी जी ने असहयोग आंदोलन को एकाएक बंद कर दिया। जवाहरलाल और उनके साथियों को यह बात समझ में नहीं आई।

लेकिन जवाहरलाल को गांधी जी पर अपार भरोसा था। उनका विचार था कि गांधी जी के मार्ग पर चलकर ही देश आजाद होगा। गांधी जी के निर्णय के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? वह समझना चाहते थे।

गांधी जी जेल में थे। उनपर अहमदाबाद में मुकदमा चल रहा था। जवाहरलाल उनसे मिलने के लिए वहां गए। जेल में ही मुलाकात की। उनसे मिलकर उनके संशय लगभग दूर हो गए। उनका उसी मार्ग पर चलने का इरादा बदला नहीं, और भी पक्का हो गया।

अहमदाबाद से लौटकर जवाहरलाल कांग्रेस संगठन को मजबूत करने में जुट गए। जोरों से प्रचार शुरू किया। पर्चे छाप कर बांटे। इलाहाबाद में तथा अन्य स्थानों पर सभाएं कीं। उनकी भाषा में गांधी जी का स्वर था। कांग्रेस संगठन में नयी जान आने लगी। सरकार को यह कैसे सहन होता? दमन शुरू हुआ। जवाहरलाल को लगा एक्ट तोड़ने का आंदोलन फिर चलाना पड़ेगा। उसके लिए संगठन को तैयार करना शुरू कर दिया। रिहाई के दो महीने बाद ही उनको फिर पकड़ लिया गया।

स्वदेशी आंदोलन का एक हिस्सा था विदेशी कपड़ों का बायकाट। शहर के दुकानदारों से कहा गया कि विदेशी कपड़ा न मंगवाएं, न बेचें। कुछ दुकानदारों ने यह बात नहीं मानी। उनपर जुर्माना किया गया। उनकी दुकानों के सामने कांग्रेस वालों ने धरना दिया। जवाहरलाल पर आरोप लगा कि उन्होंने दुकानदारों को डराया। उनके विरुद्ध आतंक फैलाया। इस आरोप के आधार पर उनको 18 महीने के कठिन बंदीवास का दंड दिया गया। सौ रुपये जुर्माना भी किया गया। यदि जुर्माना नहीं दिया गया तो तीन महीने का और बंदीवास भुगतान होगा। उनको लखनऊ की जेल में डाल दिया गया।

उन पर मुकदमा चला तो उन्होंने अपनी सफाई नहीं दी। अदालत के सामने अपना पक्ष रखते हुए उन्होंने कहा, "जब से हमारे संत समान प्रिय नेता को जेल में डाला गया है जेल हमारे लिए स्वर्ग समान है, तीर्थस्थान है।... मैं कितना भाग्यशाली हूं। भारत की आजादी की

लड़ाई में भाग लेना छोटा सम्मान नहीं । महात्मा गांधी जैसे नेता के नीचे काम करना दोहरे सौभाग्य की बात है । अपने प्रिय देश के लिए कष्ट सहने से बड़ा सौभाग्य किसी भारतीय के लिए और क्या हो सकता है ? इससे बड़ी बात या तो लड़ाई में शहीद होना ही हो सकती है । या फिर सपने का साकार होना ।"

पहले की तरह इस बार भी वह समय से पहले छोड़ दिए गए । 31 जनवरी 1923 को सरकार ने सभी 107 राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया । जवाहरलाल के 18 महीने पूरे नहीं हुए । 6-7 महीने में ही बाहर आ गए ।

1923 में कांग्रेस को इलाहाबाद नगरपालिका के चुनावों में भारी सफलता मिली । जवाहरलाल को नगरपालिका का प्रधान चुन लिया गया । परंतु उनका मन उसमें नहीं था । वह उस समय प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री थे । उन्होंने प्रांत की सभी कांग्रेस शाखाओं को चिट्ठी भेजी । उसमें अपने मन की हालत बताई । उन्होंने लिखा, "जिस दिन मुझे लगेगा कि नगरपालिका प्रधान होने से मेरे कांग्रेस के काम में बाधा आती है मैं यहां से त्यागपत्र दे दूंगा । यह पद मेरे लिए केवल आजादी के करीब पहुंचने का साधन है । देश की सेवा का अवसर । उसका सीधा रास्ता तो वही है जो हमारे नेताओं ने तय किया । उसी रास्ते पर चलना चाहिए । इन संविधान की गलियों में भटकने का कोई लाभ नहीं । मेरा मन क्रांति के पक्ष में है । मैं क्रांति, सीधी टक्कर और संघर्ष में विश्वास करता हूं । मैं जानता हूं कि हमें आगे बढ़कर शत्रु के साथ मोर्चा लेना होगा । उसकी कीमत भी चुकानी होगी । जब तक कि हम विजय प्राप्त नहीं कर लेते । मैं पिछले कुछ वर्षों के भारत के इतिहास को नहीं भूला हूं । कैसे कष्ट से गुजरा है हमारा देश ? मैं किसी पद पर बैठा रहूं, जब मेरा प्रिय नेता जेल में है । यह मुझे स्वीकार नहीं । जब भी शत्रु से लोहा

लेना होगा मैं आगे बढ़ूंगा, लड़ूंगा और अपनी पूरी ताकत से चोट करूंगा। जब तक स्वराज नहीं मिलता यही मुख्य काम है। बाकी सब प्रशिक्षण और तैयारी है।"

जवाहरलाल ने क्रांति की बात की है। उनके विचार के अनुसार गांधी का अहिंसा का मार्ग ही क्रांति का मार्ग था। हिंसक क्रांति के पक्ष में वह नहीं थे। उन दिनों उन्होंने स्पष्ट किया था, "मेरा विश्वास है भारत की गति अहिंसा और असहयोग में है। भारत की ही नहीं सारे संसार की। संसार में हिंसा बहुत देर तक चली है। यह परखी गई परंतु परीक्षा में पूरी नहीं उतरी। आज के यूरोप को देख लें। स्पष्ट है कि हिंसा से कोई समस्या हल नहीं होती। मैं समझता हूं कि यूरोप में हिंसा और बढ़ेगी। यह अपनी ही सुलगाई हुई आग में जलकर राख हो जाएगी।"

कम्युनिस्ट और फासिस्ट क्रांतियों के बारे में उन्होंने लिखा, "दोनों पश्चिमी मार्ग हैं। दोनों एक जैसे हैं। वे हिंसा और कट्टरपन के दो रूप हैं।"

आगे चलकर साफ कहा, "हमारे सामने दो विकल्प हैं। एक ओर लेनिन और मुसोलिनी तथा दूसरी ओर गांधी। क्या यह जानने में कोई कठिनाई हो सकती है कि भारत की आत्मा किधर बोलती है?"

नगरपालिका का काम ठीक तरह चलाने के लिए जवाहरलाल की बड़ी प्रशंसा हुई। कर्मचारियों में अनुशासन आया। किसी से पक्षपात नहीं होता था। अपने विचार दूसरों पर थोपने की कोशिश वह नहीं करते थे। उन्होंने कर्मचारियों को खादी पहनने की प्रेरणा दी। पालिका का काम हिंदी या उर्दू में करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। लेकिन किसी को इसके लिए मजबूर नहीं किया।

राष्ट्रीय विचार अवश्य फैलाए। इकबाल का तराना "सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तां हमारा" स्कूलों में गाया जाने लगा। तिलक दिवस और

गांधी दिवस मनाया जाने लगा । कांग्रेस के नेता देशबंधु चितरंजन दास, हकीम अजमल खां और शौकत अली को नगरपालिका की ओर से मानपत्र दिए गए । सरकार का आदेश हुआ की मानपत्र केवल वायसराय और गवर्नर को दिया जाए । जवाहरलाल ने उस आदेश के विरुद्ध प्रस्ताव पास करवाया । खास बात यह थी कि सरकार के नामजद सदस्यों ने भी उनका साथ दिया । उन दिनों वायसराय लार्ड रीडिंग इलाहाबाद आए । यह वही थे जिन्होंने अकाली आंदोलन का दमन किया था और गांधी को जेल में डाला था । नगरपालिका की ओर से उनको मानपत्र नहीं दिया गया ।

प्रांत की कई अन्य नगरपालिकाओं में भी कांग्रेस के प्रधान थे । जवाहरलाल उनके साथ भी संपर्क रखते थे । 1924 में अलीगढ़ में जातीय नगरपालिका सम्मेलन हुआ । उसमें वह सम्मेलन के प्रधान चुने गए । लेकिन वह महसूस करने लगे कि वह बहुत कुछ नहीं कर पा रहे । उनका काम बड़े क्षेत्र में हैं । सभी लोग समझते थे वह बहुत सफल रहे हैं । मगर वह अपने काम से संतुष्ट नहीं थे । वह तीन साल के लिए चुने गए थे परंतु दो ही वर्ष पूरे करके त्यागपत्र दे दिया ।

कांग्रेस के महामंत्री

1923 में मौलाना मुहम्मद अली कांग्रेस के प्रधान चुने गए। उन्होंने जवाहरलाल को महामंत्री बना लिया । जवाहरलाल ने कांग्रेस के झगड़ों के कारण पदत्याग कर दिया था । फिर इस झमेले में नहीं पड़ना चाहते थे । लेकिन मौलाना की बात टालना भी नहीं चाहते थे । मौलाना उनसे

प्यार भी करते थे। जवाहरलाल का मंत्री होना वह अपने काम के लिए जरूरी समझते थे।

मौलाना जब प्रधान हुए तो कांग्रेस सम्मेलन कोकनाडा में हुआ। वहां कांग्रेस सेवा दल की बुनियाद पड़ी। कांग्रेस में कमी थी, तो अनुशासन की। सेवा दल यह कमी पूरी करने के लिए बनाया गया। डा. हार्डीकर ने इसके संगठन का बीड़ा उठाया।

जवाहरलाल को यह काम बहुत पसंद आया। उन्होंने इसमें पूरा सहयोग दिया। कांग्रेस के कुछ बड़े नेताओं ने इसका विरोध किया। वह समझते थे कि यह सेना कांग्रेस पर हावी हो जाएगी। कुछ समझते थे कि अलग से दल बनाने की जरूरत नहीं। उसका काम राजनीतिक नहीं होना चाहिए। दल के स्वयंसेवक नेताओं की आज्ञा का पालन करें। यही उनका अनुशासन होगा। दल का प्रशिक्षण सेना जैसा था। नेता लोगों के विचार से यह अहिंसा के प्रतिकूल था।

स्वराज दल वाले विधान सभा में चले गए थे। उनका कहना था अंदर से विरोध करेंगे। गांधी जी सहमत नहीं थे। वह अंदर से विरोध उचित नहीं समझते थे। या तो सरकार का दिया संविधान मानो या न मानो। यदि मानते हो तो विधान सभा में जाओ और उनके नियमों का पालन करो। यदि नहीं मानते तो चुनाव का ही बायकाट करो।

विधान सभा में जाने का अनुभव बहुत अच्छा नहीं रहा। वे लोग विधान सभा में जोशीले भाषण करते। वह समाचार पत्रों में छप जाते और बस ! सरकार पर इसका कुछ असर नहीं होता था। जो चाहे कानून बना लेती थी। अंतिम अधिकार वायसराय और गर्वनर के हाथ में था। विधान सभा बिल को रद्द करती। ऊपर वाले उसे पास करके कनून बना देते।

जो लोग विधान सभाओं में गए उनमें से कुछ मंत्री बना दिए गए।

वे सरकार के सहयोगी हो गए। पद पाने के लोभ में फंस गए। बाद में यही लोग संप्रदायवादी राजनीति के नेता बने। स्वराज दल के नेता मोतीलाल और देशबंधु चितरंजन दास अपने साथियों के इस व्यवहार से बहुत निराश हुए।

गांधी जी भी इस सबसे बहुत दुखी हुए। भाषणों में हिंसा का समर्थन कड़े शब्दों में हुआ था। उनको लगा कि कांग्रेस के लोग अहिंसा के प्रति सच्चे नहीं थे। इस पर उन्होंने रोते हुए भाषण किया। यह देखकर कमेटी के सभी लोगों की आंखों में आंसू आ गए। इस वर्ष 1924 के अंत में कांग्रेस सम्मेलन बेलगांव में हुआ। गांधी जी प्रधान चुने गए। उन्होंने भी जवाहरलाल को महामंत्री बनाया।

गांधी जी ने राजनीतिक जोश नहीं दिलाया। कांग्रेस को रचनात्मक कार्य पर लगाया। उन दिनों में ही हिंदू-मुस्लिम दंगों का प्रकोप बढ़ा। कांग्रेस को समझ में नहीं आता था क्या किया जाए। वह किसी भी संप्रदाय का पक्ष लेने के विरुद्ध थी। वही नीति चलती रही। गांधी जी ने बहुत पहले एक उपाय सुझाया था। बहुमत उदारता दिखाए तो विवाद हल हो सकता है। किंतु विदेशी सरकार उस उपाय को भी असफल बना रही थी। विवाद सरकारी नौकरियों और विधान सभाओं में स्थानों के बंटवारे पर होता था। किसी संप्रदाय की आर्थिक या सामाजिक समस्याओं के हल की बात नहीं होती थी। नौकरियों और स्थानों का बंटवारा सरकार के हाथ में था। वह बड़ी बोली, बड़ी कीमत देकर किसी भी संप्रदाय को अपनी ओर कर लेती थी।

जवाहरलाल केवल सरकार को दोषी ठहराना काफी नहीं समझते थे। अपनी कमजोरी समझने पर जोर देते थे। चाहते थे स्वतंत्रता संघर्ष के साथ आर्थिक पक्ष जोड़ा जाए। तभी लोग नौकरियों आदि की बात सोचना बंद करेंगे। उसके बिना असहयोग भी पूरा नहीं होता था।

कांग्रेस के नेताओं ने एकता सम्मेलनों का सहारा लिया । अलग अलग संप्रदायों के नेताओं को एक साथ बुलाते । उनको एकता की बात समझाते । आपस में समझौते के लिए कहते । मगर फल कुछ न निकलता । हर पक्ष के लोग अपनी बात पर अड़े रहते ।

जवाहरलाल इससे बहुत परेशान थे । मुसलमान नेताओं की बातों से लगता उनको राष्ट्रवाद से लगाव नहीं । हिंदू नेता बात राष्ट्रवाद की करते, व्यवहार उसके खिलाफ । कांग्रेस के अंदर भी बहुत से मुसलमान नेता थे । उन्होंने कांग्रेस के अंदर राष्ट्रवादी मुस्लिम दल का गठन किया । वे लोग अपने प्रस्तावों द्वारा सांप्रदायिक नेताओं का मुकाबला करते । उनके इस प्रकार के व्यवहार से संप्रदायवादी हिंदुओं को ही ताकत मिलती । इस प्रकार एकता सम्मेलन भी समस्या का हल नहीं कर पाया ।

पूर्ण स्वराज की ओर

1929 के दिसंबर मास में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ । जवाहरलाल इसके अध्यक्ष बनाए गए । इस अधिवेशन में पहली बार कांग्रेस ने अपना ध्येय 'पूर्ण स्वराज' घोषित किया । कांग्रेस के इतिहास में यह एक नया और क्रांतिकारी मोड़ था । भारत की आजादी को दुनिया के पराधीन देशों की आजादी का अंग बनाया गया । इस सारी सोच के निर्माण में जवाहरलाल की प्रमुख भूमिका थी ।

1926 में जवाहरलाल की पत्नी कमला बहुत बीमार हो गईं । वे पत्नी को लेकर यूरोप चले गए थे । यूरोप प्रवास के समय एक साम्राज्य विरोधी सम्मेलन से संपर्क सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा । इसमें उन लोगों ने भाग लिया, जो अपने अपने देश में आजादी का संघर्ष चला रहे थे । स्वतंत्र

देशों के ऐसे लोग भी आए जिनको इन संघर्षों से सहानुभूति थी। जवाहरलाल कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर इसमें शामिल हुए। उनका इसमें बड़ा योगदान रहा।

सम्मेलन में साम्राज्य विरोधी लीग बनाने का निर्णय हुआ। जवाहरलाल उसके उपप्रधान चुने गए। सम्मेलन में उन्होंने बताया कैसे भारत का शोषण हो रहा है। और कैसे विदेशी सरकार भारतवासियों को एक दूसरे से लड़ा रही है।

जवाहरलाल के पांव अपनी धरती से जुड़े हुए थे। दूसरों के विचार से वह लाभ तो उठाते थे। लेकिन उन विचारों के गुलाम नहीं होते थे। आजादी से सोचते थे। यही सोच उनकी सभी नीतियों का आधार बनी। अपने देशवासियों को भी वह वही सिखाना चाहते थे। यूरोप वास के अंतिम दिनों में वह रूस भी गए।

यूरोप के अनुभवों ने जवाहरलाल को बदला। भारत की राजनीति में अधिक लोग उपनिवेश का दर्जा पाने और स्वतंत्रता को एक जैसा मानते थे। जवाहरलाल इससे संतुष्ट नहीं थे। उपनिवेश दर्जा कैनेडा और आस्ट्रेलिया के लिए ही ठीक हो सकता था। भारत के लिए नहीं। इसलिए वह पूर्ण आजादी के लिए सीधा संघर्ष करना चाहते थे। उन्होंने गांधी जी को पत्र में लिखा, "मेरी समझ में नहीं आता कि उपनिवेश दर्जा पाना राष्ट्रीय संगठन का ध्येय कैसे हो सकता है। मेरा तो इस विचार से ही दम घुटता है।"

1927 में कांग्रेस सम्मेलन मद्रास में हुआ। वहां जवाहरलाल ने प्रस्ताव रखा कि भारत का ध्येय पूर्ण स्वराज्य है। पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास कर दिया गया। अर्थ स्पष्ट नहीं किया। कांग्रेस का संविधान जैसे का तैसा रहा। जवाहरलाल को लगा प्रस्ताव केवल उनको खुश करने के लिए पास किया गया है। समझा नहीं गया।

गांधी जी उस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे। जवाहरलाल को यह अच्छा नहीं लगा। तो भी उन्होंने गांधी जी का खुला विरोध नहीं किया। अपने तौर पर पूर्ण स्वराज्य का प्रचार करते रहे।

उसी वर्ष एक सर्वदल सम्मेलन हुआ। उसमें भी यह सवाल उठा। सम्मेलन ने भावी भारत का संविधान बनाने के लिए एक कमेटी बनाई। उसके प्रधान मोतीलाल नेहरू थे। उन्होंने उपनिवेश दर्जे के पक्ष में रिपोर्ट दी। उसमें हिंदू-मुस्लिम विवाद निपटाने के लिए भी कुछ सुझाव थे। जवाहरलाल दूसरी बात से तो सहमत थे। लेकिन उपनिवेश दर्जे की बात के खिलाफ। इस सवाल पर उन्होंने अपने पिता के साथ खुली बहस की।

अपनी इस बात का प्रचार करने के लिए इंडीपेंडेंस फार इंडिया लीग (भारत स्वाधीनता लीग) का संगठन किया। उसमें पूर्ण स्वराज्य के ध्येय का अर्थ समाजवादी लोकतंत्र बताया गया। गांधी जी तथा दूसरे कांग्रेस नेता जवाहरलाल के इन विचारों के खिलाफ थे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस के महामंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। किंतु कार्यकारिणी ने उसे स्वीकार नहीं किया। जवाहरलाल के विचारों से देश के युवकों में गरमी आई। वह युवकों के प्रिय नेता बन गए।

उसी वर्ष कांग्रेस सम्मेलन कलकत्ता में हुआ। मोतीलाल जी प्रधान थे। वह चाहते थे उनकी रिपोर्ट का समर्थन कांग्रेस द्वारा हो। गांधी जी उनके साथ थे। लेकिन जवाहरलाल ने इसका कड़ा विरोध किया। साम्राज्यवाद से कोई भी नाता उनके गले नहीं उतरता था। कांग्रेस में इस सवाल पर फूट पड़ने का खतरा उठ खड़ा हुआ। उसे टालने के लिए समझौते की राह निकाली गई। प्रस्ताव उपनिवेश दर्जे के समर्थन में पास हुआ। साथ एक शर्त लगा दी गई कि सरकार को नेहरू रिपोर्ट एक वर्ष के अंदर माननी होगी। नहीं हुआ तो कांग्रेस अपने पूर्ण स्वराज्य के

प्रस्ताव पर आ जाएगी ।

एकता की खातिर जवाहरलाल ने प्रस्ताव का विरोध नहीं किया । परंतु समर्थन भी नहीं दिया । जब प्रस्ताव पास हुआ तो वह सम्मेलन में नहीं आए । इसपर गांधी जी ने कहा, "वह (जवाहरलाल) इस प्रस्ताव को अपने मन के अनुकूल नहीं समझता । परंतु उसका दिल बड़ा है । बेकार कड़वाहट पैदा करना नहीं चाहता. . . उसे निराशा क्यों न हो ? वह जवाहरलाल नहीं होगा यदि अपने लिए अलग और अनोखा मार्ग नहीं खोजेगा । उसको किसी की परवाह नहीं । अपने पिता, अपनी पत्नी और अपनी बच्ची की भी नहीं । उसको केवल अपने देश और उसके प्रति अपने कर्तव्य की परवाह है । और किसी बात की नहीं ।"

कांग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट को मान लिया । लेकिन एक वर्ष के अंदर सरकार द्वारा भारत को उपनिवेश का दर्जा देने की आशा नहीं थी । इसलिए पूर्ण स्वतंत्रता के लिए असहयोग आंदोलन की तैयारी शुरू हो गई ।

जवाहरलाल ने काम शुरू कर दिया । वह कांग्रेस के लिए लोगों को तथा मजदूरों, किसानों को आंदोलन से जोड़ने लगे । कांग्रेस के लिए पूरा समय काम करने वाले स्वयंसेवक बनाने लगे । इसके लिए आवश्यक धन इकट्ठा किया ।

सरकार जवाहरलाल के काम से घबरा उठी । उसे लगा कांग्रेस जवाहरलाल और सुभाष बोस जैसे लोगों के हाथों में जा रही है । यह भी लगा कि वे लोग साम्यवादी आंदोलन के साथ चल रहे हैं । कट्टर राष्ट्रवादी तथा साम्यवादी मिल रहे हैं । सरकार ने इन दोनों को अलग करने की योजना बनाई ।

उस योजना के अनुसार साम्यवादी नेताओं को पकड़ लिया गया । मेरठ जेल में उनपर मुकदमा चलाया गया । आरोप लगाया कि वे सरकार

के खिलाफ षड्यंत्र कर रहे थे ।

सरकार को आशा थी कि इस मुकदमे से लोग भड़क उठेंगे । लेकिन ऐसा नहीं हुआ । अब जवाहरलाल को उस मुकदमे में फंसाने की कोशिश होने लगी । प्रचार हुआ वह उनके सहयोगी हैं । साम्राज्यवाद विरोधी लीग को साम्यवादी संगठन बताया गया । उनको यूरोप से जो पत्र आते थे वह पकड़े जाने लगे । जवाहरलाल के खिलाफ उनसे कोई पूरा प्रमाण नहीं बनता था । उनकी ओर से लिखा गया कोई पत्र नहीं मिला । एम. एन. राय जाने माने साम्यवादी नेता थे । उनका एक झूठा पत्र जवाहरलाल के नाम बनाया गया । पत्र में लिखा था कि वह "मास्को और भारत के बीच कड़ी हैं ।"

जवाहरलाल पर ऐसा आरोप साबित करने के लिए सरकार के पास कुछ नहीं था । बात उलटी थी । साम्यवादी उनके कट्टर आलोचक थे । उनके विरुद्ध प्रचार करते थे कि वह उनके आंदोलन के लिए रुकावट हैं । जनता को अपने नारों से लुभा रहे हैं । जवाहरलाल फंसाये नहीं जा सके ।

साम्यवादियों को जवाहरलाल से बड़ी निराशा हुई थी । वे चाहते थे कि वह कांग्रेस में बंटवारा करवाएं और क्रांतिकारी काम करें । जवाहरलाल उनसे सहमत नहीं हुए । कांग्रेस को ही असहयोग के लिए तैयार करते रहे ।

अब उनके सामने एक और उलझन आई । सितंबर 1929 में उनको कांग्रेस अध्यक्ष बनाने का निर्णय हुआ । अगले महीने अक्तूबर में वायसराय ने घोषणा की कि बरतानिया सरकार उपनिवेश का दर्जा देने को तैयार है । भारत के नेताओं से उनके लिए बातचीत की जाएगी । गांधी जी तथा नरम दल कांग्रेसी इस बातचीत के लिए तैयार थे । कांग्रेस की ओर से एक घोषणा की गई, दिल्ली घोषणा । सरकार के साथ सहयोग के लिए कुछ शर्तें रखी गईं ।

यह घोषणा पीछे की ओर कदम था । जवाहरलाल ने इसका विरोध किया । दूसरों ने उनकी बात नहीं मानी । उनके मित्र सोचते थे वह उसपर हस्ताक्षर नहीं करेंगे । परंतु उन्होंने अनुशासन का पालन करते हुए उसे समर्थन दे दिया । क्योंकि वह कार्यकारिणी के सदस्य थे । इस पर उनके मित्रों ने उनकी आलोचना की । सुभाष बोस ने कहा, "जवाहरलाल के सिद्धांत के खिलाफ गांधी जीत गए हैं ।"

जवाहरलाल बहुत दुखी थे । उन्होंने महामंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया । अध्यक्ष पद को छोड़ने के लिए भी तैयार थे । लेकिन गांधी, मोतीलाल और डा. अंसारी ने उनको ऐसा करने से रोक दिया । दलील दी गई कि सरकार शर्तें नहीं मानेगी । हुआ भी वही । वायसराय नहीं माने कि बातचीत के तुरंत बाद उपनिवेश दर्जा घोषित किया जाए । जवाहरलाल की बात सफल हो गई । अब वह बेखटके अपने मार्ग पर चल सकते थे । नरम और गरम दोनों प्रकार के विरोधियों के मुंह बंद हो गए ।

कांग्रेस अध्यक्ष

1929 में कांग्रेस सम्मेलन लाहौर में हुआ । जवाहरलाल का लाहौर में बड़ा भारी स्वागत हुआ । लोग उन्हें 'बेताज बादशाह' पुकारते थे ।

नेहरू के विचार से देश में फैले अंधेरे और गरीबी की बुनियाद विदेशी राज है । उन्होंने सोचा उससे छुटकारा पाना सबसे पहला काम है । उसके लिए सब देशवासियों को मिलकर संघर्ष करना होगा । धर्म, संप्रदाय, जातपात के झगड़ों से बचना होगा । उन्होंने अपने विचार देशवासियों के सामने रखे । चारों ओर उनके विचारों का स्वागत हुआ ।

जवाहरलाल को अध्यक्ष बनाने में गांधी जी का बड़ा हाथ था। कांग्रेस के बहुत से पुराने नेता उनसे सहमत नहीं थे। जवाहरलाल जुझारू राजनीति के पक्ष में थे। अंग्रेजी साम्राज्य से सीधी टक्कर लेते थे। पुराने नेता अंग्रेजों से एकदम अलग होना नहीं चाहते थे। वे केवल प्रशासन में सुधार चाहते थे। जवाहरलाल की सोच दूसरी थी। वह अंग्रेजी साम्राज्य का अंत चाहते थे। पूरी आजादी में ही भारत का कल्याण देखते थे।

गांधी जी देश के नेता बने तो उन्होंने राजनीति को नया मोड़ दिया। शहरों को उनकी सीमा से निकाल कर गांवों तक पहुंचाया। गांधी जी को लगा वह उनके काम को आगे बढ़ा रहे हैं। इसीलिए उन्होंने कांग्रेस की बागडोर जवाहरलाल के हाथों में दे दी।

जवाहरलाल के विचारों ने साधारण जनता के मन को छू लिया। विदेशी सरकार से सहयोग की बात कोई पसंद नहीं करता था। अंग्रेजों पर से विश्वास उठ चुका था। जवाहरलाल ने पूरी आजादी लेने का ध्येय सामने रखा। पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया।

पूरी आजादी या पूर्ण स्वराज्य क्या होगा? जवाहरलाल ने इस सवाल का जवाब अपने भाषण में दिया।

उन्होंने समझाया कि दुनिया बदल रही है। आजादी की लहर चारों ओर फैल रही है। यूरोप के साम्राज्य लड़खड़ा रहे हैं। नयी लहर के सामने टिक नहीं पायेंगे। नयी दुनिया में एशिया के देश आगे बढ़ेंगे। भारत को उसे बनाने में योगदान करना होगा। उसके लिए आजाद होना जरूरी शर्त है। अपने इस संघर्ष में भारत दूसरों से बहुत कुछ सीख सकता है। उनको बहुत कुछ सिखा भी सकता है।

भारत की हालत का चित्र भी खींचा उन्होंने। देश का इतिहास सदियों पुराना है। लेकिन एक बुनियादी कमजोरी रही है। समता और

बराबरी नहीं रही, कुछ लोग गरीब रहे, कुछ अमीर । कुछ अपने को ऊंचा समझते रहे दूसरों को नीचा । राजे रजवाड़े, जमींदार और साहूकार किसानों की मेहनत का फल खाते थे । जवाहरलाल ने कहा यह कमजोरी दूर करनी होगी ।

उन्होंने अपने आप को समाजवादी बताया । लोकतंत्र पर अपना विश्वास भी बताया । साम्राज्यवाद और लोकतंत्र समाज में समता लाने का मार्ग थे । लोकतंत्र का अर्थ है जनता की इच्छा से शासन । समाजवाद का अर्थ है भूमि और कारखानों पर जनता के अधिकार । इस प्रकार गरीबी और अमीरी के बीच की खाई पाटी जा सकेगी ।

उस समय कांग्रेस इन बातों को पूरी तरह मानने को तैयार नहीं थी । उनका विश्वास था कि वह मार्ग अपनाना ही पड़ेगा । आगे बढ़ने के लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं । सारी दुनिया में इन आदर्शों का प्रसार हो रहा था । मतभेद केवल यह है कि उधर चलने में कितनी तेजी हो ।

भारत को एक दूसरा रोग लग गया था । अलग अलग धर्मों को मानने वालों में दूरी । विदेशी सरकार ने इस दूरी को घृणा का रूप दे दिया था । हिंदू-मुसलमानों के बीच दंगे होने लगे थे । जवाहरलाल ने इस रोग का उपचार सुझाया । जो समुदाय बड़ी संख्या में है वह उदारता दिखाए । परंतु केवल ऐसा करने से विवाद हल नहीं होगा । इसका उपाय है आर्थिक विकास की सोच । आने वाले दिनों में लोग धर्म और जाति की बात कम करेंगे । गरीबी, बेकारी, बीमारी दूर करने की अधिक सोचेंगे । लेकिन तब तक उदारता से काम लेना होगा ।

विदेशी राज भारत के सभी रोगों को बढ़ाता है । इसलिए सबसे पहला काम उससे छुटकारा पाना है । भारत का राज भारतवासियों के हाथ में आना चाहिए । यह कैसे होगा ? क्या केवल अहिंसा के ही मार्ग से यह संभव है ? गांधी जी अहिंसा को ही ठीक मानते थे । वह हिंसा

को अनैतिक मानते थे। जवाहरलाल अहिंसा के वैसे समर्थक नहीं थे। अहिंसा को हिंसा से ऊंचा मानते थे। यदि उससे काम न चले तो हिंसा में भी हरज नहीं था। हिंसा बुरी है परंतु गुलामी उससे भी बुरी। ऐसा सोचते थे जवाहरलाल।

गांधी जी के विचार को भी उन्होंने स्पष्ट किया। गांधी जी कहते थे कायरता हिंसा से भी बुरी है। संघर्ष से भागने से अच्छा है हिंसा को ही अपना लें। मगर जब तक संभव हो हिंसा से बचें।

जवाहरलाल देशवासियों को अपने विचार समझाते रहे। लोग उनको मानने लगे। विशेषकर नयी पीढ़ी के लोग। गरीब जनता का दिल जीत लिया उन्होंने। उनकी लोकप्रियता दिन-रात बढ़ने लगी। कांग्रेस पर भी उनका प्रभाव बढ़ गया। गांधी जी का भरोसा भी उनपर बढ़ता ही गया। 1929 के बाद आजादी आने तक वह दो बार फिर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए।

लाहौर के जोश को देखकर जवाहरलाल को अपार हर्ष हुआ। पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास हो गया। जवाहरलाल ने नए वर्ष की सांझ में आजादी का झंडा लहराया। वहीं से घोषणा हुई आजादी का दिन मनाने की। उसके लिए 26 जनवरी का दिन तय हुआ। उस दिन सारे देश में आजादी का संकल्प लेना तय हुआ। संकल्प की भाषा जवाहरलाल और गांधी जी ने मिलकर बनाई। अब विदेशी सरकार से सीधी टक्कर का समय था। नेताओं को उसके लिए कार्यक्रम बनाना था।

गांधी जी ने नमक सत्याग्रह का कार्यक्रम बनाया। नमक बनाने पर सरकार 'कर' लेती थी। गांधी जी ने यह 'कर' हटाने की मांग की। वह समुद्र तट की ओर दांडी नामक स्थान पर नमक बनाने के लिए चल दिए। यह कोई बड़ी बात नहीं थी। इससे केवल नमक कानून भंग होता था। कानून भंग की बात जवाहरलाल को जंची।

नमक सत्याग्रह के लिए दांडी मार्च मामूली घटना नहीं थी। रास्ते भर सभाएं हुईं। जहां कहीं पड़ाव होता आस पास के गांव के लोग आ जाते। ये समाचार देश भर में पहुंचने लगे। चारों ओर एक नयी लहर दौड़ गई। गांधी जी ने असहयोग की बात कही थी। उसपर बहुत से सरकारी कर्मचारियों ने पदत्याग कर दिया। जवाहरलाल इस सबसे बहुत प्रभावित हुए। कांग्रेस कमेटियों से वैसे ही नमक कानून भंग करने को कहा। किसानों से कहा कि भूमि का लगान न दें।

जालियांवाला बाग की 1919 की घटना के बाद उसकी याद मनाई जाती थी। उस दिन गांधी जी ने नमक बनाया। कानून भंग किया। जवाहरलाल ने इलाहाबाद में नमक बनाया। लगान न देने का अभियान भी साथ ही चला दिया गया। रायबरेली जिले में इसके लिए किसानों की कमेटियां बना दी गईं।

इससे सरकार घबरा उठी। 14 अप्रैल को जवाहरलाल पकड़ लिए गए। मुकदमा चला और 6 महीने साधारण कारावास का दंड मिला। कांग्रेस और सरकार में सीधी टक्कर शुरू हो गई। कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

सुधारवादी नेताओं को चिंता हुई। वह टकराव पसंद नहीं करते थे। सरकार से समझौता करवाने की कोशिश करने लगे। गांधी जी पुणे की जेल में थे। जवाहरलाल इलाहाबाद की नैनी जेल में। समझौता दोनों की सहमति से ही हो सकता था। सुधारवादी सप्रू और जयकर दोनों के बीच चक्कर लगाने लगे। कांग्रेस की ओर से पूरी आजादी को समझौते की शर्त बनाया गया। विशुद्ध भारतीय सरकार बने। उसे बरतानिया से अलग होने का पूरा हक हो। बरतानिया को जो लेना हो उसका निर्णय पंचों पर छोड़ा जाए। सरकार ने शर्तें नहीं मानीं। समझौते की बात आई गई हो गई।

मोतीलाल जी भी जेल में थे । वह बीमार थे । इस कारण उनको छोड़ दिया गया । 6 महीने पूरे होने पर जवाहरलाल भी छोड़ दिए गए ।

जेल से छूटकर जवाहरलाल फिर कांग्रेस के काम में लग गए। कांग्रेस गैर कानूनी थी। उसका कार्य कानून के खिलाफ था। जवाहरलाल पकड़े जा सकते थे । परंतु उन्होंने चिंता नहीं की । तेजी से काम करने लगे । नमक कानून भंग करने का काम तेज कराया । उसके साथ विदेशी माल के बायकाट का अभियान भी तेज किया ।

इसपर वह फिर पकड़ लिए गए। वह जेल में थे जब उनकी इकतालीसवीं वर्षगांठ आई । सारे देश में वर्षगांठ उत्सव मनाया गया । 384 गांवों और नगरों में लगभग दो करोड़ लोग उस त्योहार में शामिल हुए। एक जगह सरकार ने गोली चलाई । 26 स्थानों पर लाठी चार्ज हुआ । एक आदमी मारा गया, 1500 घायल हुए और 1679 जेल में डाले गए ।

जेल में उनको एक और अच्छा समाचार मिला । उनकी पत्नी कमला को भी पकड़ कर जेल में डाल दिया गया । जेल जाते हुए कमला जी ने जनता को संदेश दिया, "मुझे बेहद खुशी है । मुझे गर्व है मैं अपने पति के कदमों पर चल रही हूं । मैं आशा करती हूं लोग झंडा ऊंचा रखेंगे ।"

हर आंदोलन में थकन आती है । समाचार अच्छे थे परंतु थकन भी आने लगी थी । उसी समय सरकार ने समझौते के लिए हाथ बढ़ाया ।

अंग्रेजों को महसूस हुआ कि कांग्रेस से समझौता किए बिना शासन नहीं चल सकता । वायसराय ने गांधी जी को बातचीत के लिए बुलाया । गांधी जी ने कुछ शर्तों पर बुलावा मान लिया । इन शर्तों में स्वराज की बात नहीं थी ।

जवाहरलाल को इससे बहुत निराशा हुई । उनका विचार था सरकार धोखा दे रही है । परंतु वह अधिक विरोध नहीं कर सके । गांधी जी जनता

की थकन को अधिक समझते थे। उन्हीं दिनों मोतीलाल जी का देहांत हो गया। जवाहरलाल के लिए बहुत गहरा दुख था। समझौते पर चर्चा के समय वह खामोश ही रहे। लेकिन निराशा के बावजूद उन्होंने अबकी बार त्यागपत्र नहीं दिया। सरकार शायद समझती थी मतभेद गहरा हो जाएगा। वैसा नहीं हुआ। जवाहरलाल आवेश में नहीं आए। उन्हें सबको साथ लेकर चलने की जरूरत समझ में आ गई थी। अपने एक युवक मित्र को पत्र में उन्होंने लिखा, "राजनीति में आवेश उचित नहीं। हमें अपने आपको काबू में रखना चाहिए। बिना सोचे समझे कोई काम नहीं करना चाहिए। जो भी काम किया जाए अकेले नहीं सबको साथ लेकर किया जाए। यदि आवेश में आएंगे तो संगठन का लाभ नहीं उठा पाएंगे। आपसी सहयोग का लाभ भी नहीं होगा।"

गांधी जी का वायसराय से समझौता हुआ। जवाहरलाल के मन में दुख था। समझौते की बात उन्हें पसंद नहीं थी। इस बीच मोतीलाल जी का देहांत हो गया था। यह चोट भी गहरी थी। इसलिए कुछ समय के लिए वह श्रीलंका की यात्रा पर चले गए।

संघर्ष ही संघर्ष

समाज को बदलने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है। भारत को बदलने का कार्य जवाहरलाल को सौंपा गया। यह निर्णय गांधी जी का भी था। उन्होंने जवाहरलाल को कांग्रेस का अध्यक्ष बनवाया था।

जवाहरलाल संघर्ष की दिशा तय कर रहे थे। इसका परिचय लाहौर सम्मेलन में मिला। उनकी सोच की झलक उनके काम में पहले से दिखाई दे रही थी। संघर्ष के नेता को टकराव और समझौते के बीच का मार्ग पहचानना होता है। शक्ति का संभलकर प्रयोग करना होता है। अपने अंदर की आग को संयम में रखना जरूरी होता है। जवाहरलाल में यह गुण था।

जवाहरलाल संघर्ष की दिशा के चार अंग मानते थे। भारतीय समाज के दुख दूर करना प्रमुख आदर्श था। दूसरा अंग था विदेशी राज का अंत। विदेशी राज के रहते भारतवासियों की पीड़ा दूर नहीं हो सकती। विदेशी राज जनता का दमन और शोषण करता था। उसका बदलना बुनियादी बात थी। उसके स्थान पर जनता की इच्छा के अनुसार चलने वाला राज बनाना था। उसी को लोकतंत्र कहा जाता है।

राज किस लिए बनाया जाता है। जवाहरलाल इसे जनता की सेवा का साधन मानते थे। राज को सबके सुख का ध्यान रखना चाहिए।

समाज से अमीर, गरीब, ऊंच, नीच का भेद भाव मिटाना चाहिए। इसके लिए वह राज को समाजवादी बनाना चाहते थे। समाजवाद उनके आदर्श का तीसरा अंग था।

यह आदर्श अकेले भारत के लिए ही नहीं थे। यूरोप में वह अन्य पराधीन देशों के नेताओं से मिले थे। उनके सामने भी वैसे ही सवाल थे। भारत जैसी कठिनाइयां उन देशों में भी थीं। वे नेता भी जवाहरलाल की तरह सोचते थे। यदि सब लोग मिलकर चलें तो सबकी सफलता आसान होगी। आपसी सहयोग से सबका संघर्ष मजबूत होगा। जवाहरलाल ने भारत के संघर्ष को दुनिया के स्वतंत्रता संघर्ष का अंग बताया। यह चौथा अंग था।

यूरोप में उन्होंने फासीवाद का आतंक भी देखा। शोषण पर आधारित पूंजीवाद की यह चरम सीमा थी। दूसरे देशों का शोषण करने वाले साम्राज्यवादी उनका साथ दे रहे थे। इस फासीवाद का विरोध भी इनके आदर्श के पक्ष का अंग बन गया।

अपने यह विचार उन्होंने खुलकर अपने भाषणों में रखे। कांग्रेस के लाहौर, लखनऊ और फैजाबाद सम्मेलनों के वह अध्यक्ष बने थे। अध्यक्ष पद से दिए उनके भाषणों में यह विचार उभर कर सामने आए। कांग्रेस की सोच में यह क्रांतिकारी बदलाव था। उस समय जो लोग कांग्रेस में थे वे इससे घबराते थे। जवाहरलाल किसानों, मजदूरों के संगठन भी कांग्रेस में शामिल करना चाहते थे। वहां उनके विचारों को आगे बढ़ाने का साधन बन सकते थे।

अपने विचारों के लिए जवाहरलाल को कांग्रेस के अंदर संघर्ष करना पड़ा। कांग्रेस पर उनसे अलग विचार वाले लोग हावी थे। वे लोग अंग्रेज सरकार से नाता तोड़ना नहीं चाहते थे। सीधी टक्कर लेने में घबराते थे। गांधी जी ने असहयोग के लिए तैयार किया था। वह भी सबने नहीं माना

था । जवाहरलाल सीधी टक्कर लेना चाहते थे । विधान सभाओं में जाने के विरोधी थे । विदेशी सरकार के शासन सुधारों को धोखा समझते थे । इसमें वह गांधी जी के अधिक करीब थे । कांग्रेस को अपने साथ लाने में दोनों कभी सफल होते कभी असफल । संगठन की एकता दोनों ही तोड़ने के पक्ष में नहीं थे ।

दूसरा संघर्ष था राजनीति क्षेत्र में – एक ओर नरम दल वाले सुधारवादी थे दूसरी ओर कट्टर राष्ट्रवादी और समाजवादी । एक पक्ष से रणनीति और विचार दोनों का भेद था । दूसरे से विचारों का मेल था, रणनीति से गहरा मतभेद । 1936 में जवाहरलाल ने समाजवाद की बात खुलकर की । उन लोगों ने सहयोग देने से इंकार कर दिया । इससे कांग्रेस में खलबली मच गई । फूट पड़ने का खतरा हो गया । गांधी जी ने समझौता करवाया । जवाहरलाल की कार्यकारिणी में उनके साथी कम विरोधी अधिक लिए गए । उन्होंने अपनी बात उनपर थोपने की कोशिश नहीं की । उन लोगों ने भी उनको अपने विचार बदलने पर मजबूर नहीं किया । वह जनता में अपने विचारों का प्रचार करते रहे ।

इस पक्ष के विरोध से उनको बाद में बहुत कष्ट हुआ । 1935 में एक कानूनी सुधार आया । उसमें शासकों का अंकुश कायम था । संप्रदायों को अलग करने की योजना थी । जवाहरलाल को यह सब पसंद नहीं था । किंतु कार्यकारिणी ने उनके अनुसार चुनाव में भाग लेने का निर्णय किया । जवाहरलाल ने चुनाव प्रचार के लिए देश भर का दौरा किया । कांग्रेस को बेहद सफलता मिली । देश के 11 में से सात प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बन गए ।

परंतु सब स्थानों पर कांग्रेस के निश्चय के अनुसार काम नहीं हुआ । इससे उनको बहुत दुख हुआ ।

जवाहरलाल को यह उलझन बहुत देर तक नहीं भोगनी पड़ी । कांग्रेस

को प्रशासन छोड़ना पड़ा । अंग्रेज सरकार ने भारत को उसकी सहमति के बिना युद्ध में धकेल दिया था । यह कांग्रेस के सभी उसूलों के खिलाफ था । युद्ध में शामिल होने या न होने का निर्णय भारत के लोगों के हाथ में होना चाहिए था । अंग्रेजों ने भारत के सम्मान पर चोट की थी । प्रशासन कमजोर कर दिया था । कांग्रेस नेताओं में तीखी गुटबाजी होने लगी । इससे जवाहरलाल को बड़ी निराशा हुई ।

कांग्रेस के अंदर उनका संघर्ष केवल नरम दल वालों से नहीं था । विचारों में अंतर था । विचारों को बदलने का संघर्ष था । अधिक परेशानी का कारण एक और था । कट्टर राष्ट्रवादियों और कट्टर समाजवादियों का व्यवहार ।

राष्ट्रवादी सरकार के साथ किसी भी समझौते के खिलाफ थे । लगातार असहयोग और टकराव के पक्ष में थे । उनके नेता सुभाष चंद्र बोस थे । वह टकराव में हिंसा अहिंसा का अंतर नहीं मानते थे । बरतानिया को शत्रु समझते थे । उनके हर शत्रु को अपना मित्र मानते थे । अपने ध्येय तक पहुंचने के लिए किसी साधन को बुरा नहीं समझते थे । गांधी जी अहिंसा की शर्त लगाते तो वह विरोध करते । जवाहरलाल गांधी जी की बात मान जाते थे । इसलिए बोस और उनके साथी उनको बुरा भला कहते ।

समाजवादी लोग भी अहिंसा को जरूरी नहीं मानते थे । दूसरे वह थोड़े समय के लिए भी समझौता नहीं करते थे । विचारों का टकराव होता तो संगठन छोड़ने को तैयार हो जाते ।

सबसे कठिन था गांधी जी से संघर्ष । गांधी जी का प्रभाव विचारों तक सीमित नहीं था ।

उनके काम ने ही जवाहरलाल का मन जीता था । उसी को देखकर वह राजनीति में कूदे थे । लेकिन दोनों के सोचने के तरीके अलग थे ।

इस अंतर के कारण कई बार दोनों में मतभेद हुआ। लेकिन दोनों एक दूसरे की ईमानदारी पर भरोसा करते थे। इसीलिए मतभेद के कारण एक दूसरे से अलग नहीं होते थे। जवाहरलाल अपनी बात कहकर गांधी जी की मान लेते थे।

गांधी के प्रेम का जवाहरलाल को सबसे बड़ा सहारा था। गांधी जी ने एक बार कहा, "जब से हम साथी बने हैं हमारे बीच मतभेद रहे हैं... तो भी मैं कहता हूं जवाहर ही मेरे वारिस होंगे। वह कहता है मेरी भाषा नहीं समझता। उसकी भाषा मैं नहीं समझता। यह बात ठीक भी हो सकती है, नहीं भी। किंतु भाषा दिलों के बीच दीवार नहीं बन सकती। मैं यह भी जानता हूं कि जब मैं नहीं रहूंगा तो वह मेरी भाषा बोलेंगे।"

आजादी के लिए अंतिम संघर्ष

1935-36 में अपनी पत्नी का इलाज कराने जवाहरलाल यूरोप गए थे। वहां उन्होंने फासीवाद का उभार देखा। यह मानवता के लिए नया खतरा था। हर तरह की आजादी के लिए खतरा। जवाहरलाल फासीवाद और साम्राज्यवाद को जुड़वां भाई समझते थे। आजादी का संघर्ष दोनों के खिलाफ लड़ना होगा। ऐसा उनका विचार था।

फासीवाद में राज तानाशाह के हाथ में होता है। उसमें जनता के हितों की चिंता नहीं की जाती। साम्राज्यवादी दूसरे देशों को दबाते हैं। जागीरदार सामंत किसानों की मेहनत का फल लूटते हैं। पूंजीवादी मजदूरों का शोषण करते हैं। यह सब अन्याय के रूप हैं। जवाहरलाल आजादी के संघर्ष को इन सबके खिलाफ संघर्ष मानते थे।

जवाहरलाल फासीवाद के विरोधी थे। उसके खिलाफ अंग्रेजों का

साथ देने को तैयार थे । परंतु वह चाहते थे अंग्रेज भारत को आजाद कर दें । अंग्रेजों का दावा था वे लोकतंत्र की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं । भारत की आजादी की घोषणा इस दावे का प्रमाण हो सकता था । कांग्रेस ने प्रस्ताव करके ऐसी घोषणा की मांग की । प्रश्न उठाया लड़ाई में जीत के बाद क्या होगा । भारत को आजाद नहीं किया जाएगा तो लोकतंत्र का दावा झूठा होगा ।

अंग्रेजों ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मतभेद का बहाना बनाया । कहा इसके चलते भारत की आजादी का रूप तय नहीं किया जा सकता । उसके लिए बातचीत लड़ाई जीतने के बाद ही हो सकेगी । उन्होंने कांग्रेस और जवाहरलाल के फासीवाद विरोध की भी अनदेखी कर दी । कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ समझौते की कोशिश की । लीग के नेता जिन्ना ने समझौते से इंकार कर दिया । उनको अपने दल के लिए अंग्रेजों की मित्रता अधिक लाभकारी दिखाई देने लगी ।

जवाहरलाल लीग जैसे संप्रदायवादी दलों को साम्राज्यवाद का साथी समझते थे । अब उसके और ठोस प्रमाण मिलने लगे । इसी तरह देसी राजाओं और नवाबों ने भी अंग्रेजों का साथ देने में अपनी भलाई देखी ।

जवाहरलाल लड़ाई के संकट का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहते थे । वह अंग्रेजों के लिए समझौते का द्वार खोलना चाहते थे । लेकिन भारत के सम्मान और आदर्शों की बलि देकर नहीं । उस समय मौलाना आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे । वह भी जवाहरलाल से सहमत थे । दोनों ने आजादी की मांग को हल्का कर दिया । केवल इतना चाहा कि लड़ाई के संचालन का काम भारतीय हाथों में दे दिया जाए । अंग्रेज सरकार ने वह भी नहीं किया । उनको लीग और रजवाड़ों की मदद पर अधिक भरोसा था । अब टकराव का रुकना कठिन हो गया ।

जवाहरलाल पर सरकार के खिलाफ बगावत फैलाने का आरोप लगाया गया । अदालत में मुकदमा चला । जवाहरलाल ने कोई सफाई नहीं दी । अदालत के सामने उन्होंने कहा, "इस अदालत में मुकदमा मुझ पर है । लेकिन संसार की अदालत में अंग्रेज साम्राज्य मुजरिम है । मुझ पर सात बार मुकदमा चल चुका है । कई बार जेल भेजा गया हूं । फिर भेज दिया जाऊंगा । सवाल मेरा नहीं है । सवाल है इस देश के करोड़ों निवासियों का । आपको उस पर विचार करना चाहिए ।"

उस अदालत को न्याय से सरोकार नहीं था । जवाहरलाल को चार वर्ष बंदीवास का दंड सुना दिया । परंतु दंड का समय पूरा होने से पंहले छोड़ दिए गए । लंदन पर लड़ाई का दबाव बढ़ रहा था । सरकार कांग्रेस से समझौते की सोचने लगी ।

समझौते की बातचीत के लिए एक मंत्री को भारत भेजा गया । उसका नाम था सर स्टैफर्ड क्रिप्स । वह अपने साथ एक प्रस्ताव लाए ।

बातचीत के लिए जवाहरलाल की वायसराय के साथ भेंट कराई गई । जवाहरलाल ने वही बात कही जो कांग्रेस कह रही थी । कांग्रेस के अध्यक्ष उस समय मौलाना आजाद थे । उन्होंने कहा था सुरक्षा और सेना की कमान भारत के हाथ में दी जाए । अंग्रेज उसे अपने राज के लिए खतरा समझते थे । वायसराय ने यह शर्त नहीं मानी । बातचीत टूट गई ।

कांग्रेस नेताओं को लगा अंग्रेज भारत छोड़ना नहीं चाहते । उनकी नीति भारत में फूट डालने की है । इससे देश में अंग्रेज विरोध गहरा हो गया ।

अगस्त 1942 में अखिल भारत कांग्रेस कमेटी की बैठक बंबई में हुई । उसमें कांग्रेस को लड़ाई के बारे में अपने विचार स्पष्ट करने थे । लेकिन बैठक से पहले ही कांग्रेस के नेताओं को पकड़ लिया गया । जवाहरलाल और उनके 11 साथियों को अहमदनगर किले में बंद कर

दिया गया। जवाहरलाल का यह सबसे लंबा बंदीवास था। वह 9 अगस्त 1942 से 15 जून 1945 तक वहां बंदी रहे।

जेल के अंदर जवाहरलाल को बाहर के समाचार बहुत कम मिलते थे। देश के हालात का पूरा पता नहीं लगता था। बाहर आकर जो कुछ देखा उससे उनको बहुत कष्ट हुआ। अपने देशवासियों में से भी कुछ लोगों की भूमिका बहुत खराब रही। सरकार ने कांग्रेस को दबाने के लिए मुस्लिम लीग को बढ़ावा दिया।

कांग्रेस और उसके सहयोगियों के काम पर पाबंदी थी। उनके प्रचार के साधन छीन लिए गए। उनके समर्थक समाचारपत्र बंद हो गए। इसके विपरीत लीग को धुआंधार प्रचार की सुविधा मिली। लीग 1940 में पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पास कर चुकी थी। इस प्रचार से मुसलमानों में वह विचार जोर पकड़ गया। उधर हिंदू महासभा ने उसका विरोध भी वैसा ही घृणापूर्ण किया। हिंदू-मुसलमानों के बीच खाई बढ़ गई।

वायसराय ने शिमला में सम्मेलन बुलाया। सभी राजनीतिक दलों के नेता बुलाए गए। गांधी जी शिमला सम्मेलन में जाने के पक्ष में नहीं थे। कांग्रेस नेता उनसे सहमत नहीं हुए। उन्होंने वायसराय का बुलावा मान लिया। जवाहरलाल को बुलाया नहीं गया था। परंतु वह भी शिमला में मौजूद रहे। जवाहरलाल को संदेह था कि वायसराय लीग का साथ देंगे। कांग्रेस का विरोध करेंगे। हुआ भी वही।

पानी सिर से निकल चुका था। अंग्रेज अपनी चाल में सफल हो गया था। कांग्रेस का संगठन ढीला और कमजोर हो गया था। फिर से संघर्ष बहुत कठिन दिखाई देता था।

1946 में एक मंत्री दल (कैबिनेट मिशन) भारत आया। उन्होंने जो प्रस्ताव रखे लीग और नरेशों के पक्ष में थे। उनको स्वीकार करने से देश

कई टुकड़ों में बंट जाता। कांग्रेस ने अपना दावा पेश किया। लीग के साथ कुछ ले देकर समझौते की बात भी की। किंतु बात नहीं बनी।

अब कांग्रेस की बागडोर एक बार फिर जवाहरलाल को सौंप दी गई। वायसराय वेवल ने बातचीत जारी रखी। केवल अपनी योजनाएं मनवा नहीं पाए। उनके स्थान पर माउंटबेटन को वायसराय बनाया गया। उनके आने के साथ ही बरतानिया के प्रधानमंत्री ने एक और घोषणा की। भारत से अंग्रेज तुरंत चले जाएंगे। यदि कांग्रेस-लीग समझौता नहीं हुआ तो सत्ता प्रांतों की सरकारों को सौंप दी जाएगी। यह भी भारत को खंड खंड करने का एक दूसरा रास्ता था।

इस हालत में कांग्रेस ने केवल एक शर्त पर वायसराय के अधीन सरकार बनाना मान लिया। बंटवारा करने या न करने का निर्णय भारतीय हाथों में छोड़ दिया जाए। जवाहरलाल और उनके साथियों का विचार था इससे हिंसा रुक जाएगी। अंग्रेज चले जाएंगे तो हिंदू-मुस्लिम मतभेद भी दूर हो जाएंगे।

उन लोगों को अंग्रेजों और लीग की कुटिलता का अनुमान नहीं था। उनमें गहरी मिली भगत थी। उसके तहत देश भर में हिंसक दंगों का तूफान खड़ा कर दिया गया। इस मजबूरी की हालत में देश का बंटवारा मान लिया गया। भारत और पाकिस्तान दो नए राष्ट्र बन गए। तय था कि दोनों के गवर्नर जनरल एक ही होंगे। परंतु जिन्ना ने यह बात नहीं मानी। उनको इसमें बंटवारे का विरोध दिखाई दिया। वह स्वयं पाकिस्तान के गवर्नर जनरल बने। जवाहरलाल भारत के पहले प्रधानमंत्री हुए।

शासन प्रमुख नेहरू

अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निर्णय लिया तो जवाहरलाल को शासन संभालना पड़ा। इनको इस काम के लिए गांधी जी ने चुना। वह जवाहरलाल को इसके लिए सबसे अधिक योग्य समझते थे। पहले वायसराय के अधीन अस्थायी सरकार बनी। उसमें जवाहरलाल शासन प्रमुख बनाए गए। 15 अगस्त 1947 से वह प्रधानमंत्री बन गए।

अब तक जवाहरलाल आंदोलनकारी थे। विचारक थे। संघर्ष के नेता थे। आंदोलन के नेता से शासन के नेता बनने पर भूमिका बदल गई। विचार और संघर्ष के रूप और दिशा बदल गई।

जवाहरलाल ने कमाल दिखाया। नयी भूमिका ऐसे निभाई कि दुनिया दंग रह गई। टूटते देश को संभाला। लोकतंत्र शासन की नींव डाली और उसे मजबूत किया। गरीबी और पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष शुरू किया। कृषि, उद्योग, व्यापार, विज्ञान का विकास होने लगा। संसार के अन्य देशों के साथ भारत के संबंध बने। अलग अलग देशों के आपसी संबंधों के बारे में नए विचार दिए। उनसे विश्व शांति की विचारधारा को बल मिला। दुनिया में भारत का नाम ऊंचा हुआ।

जवाहरलाल का काम आसान नहीं था। इतिहास नया मोड़ ले रहा था। सबसे पहली कठिनाई तो मुस्लिम लीग की थी। उसको शासन में बराबर भागीदार बनाना मजबूरी थी। उधर उसने सहयोग न करने की जैसे कसम खा रखी थी। शासन के अंदर और बाहर तोड़ फोड़ की नीति चल रही थी।

देश के बंटवारे ने भी समस्या हल नहीं की। आशा थी हिंदू-मुसलमान का झगड़ा समाप्त हो जाएगा। दोनों देशों में सहयोग और भाईचारे का वातावरण बनेगा। हुआ उसके एकदम विपरीत। दंगों की आग पहले से भी अधिक भड़का दी गई। पाकिस्तान में हिंदुओं और सिखों की मार काट बड़े पैमाने पर होने लगी। हिंदू वहां से भागकर भारत आने लगे। उसका बदला लेने के लिए हिंदू और सिख कट्टर पंथी भारत में वही सब करने लगे। मुसलमानों का जीना दूभर होने लगा। वह पाकिस्तान की ओर भागने लगे। इस प्रकार करोड़ों लोग बेघर हो गए। हजारों मारे गए। अथाह संपत्ति नष्ट हो गई।

भारत की आजादी किसी एक धर्म के मानने वालों के लिए नहीं थी। गांधी और नेहरू सब लोगों की समता में विश्वास करते थे। कोई धर्म ऐसा नहीं जिसके मानने वाले भारत में न हों। ऐसे देश में किसी एक समूह का राज नहीं हो सकता। यदि होगा तो वह लोकतंत्र नहीं होगा।

मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान मुस्लिम राज के लिए बनाया था। कांग्रेस ने भारत में लोकतंत्र की कल्पना की थी। लीग हिंदू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र मानती थी। कांग्रेस और जवाहरलाल दो राष्ट्रों वाली उस विचारधारा को नहीं मानते थे। इसलिए जो पाकिस्तान में हो रहा था, भारत के लिए योग्य नहीं था। वह भारत के आदर्श के खिलाफ होता। जन जीवन को सुधारने के लिए भी उस मार काट को रोकना जरूरी था।

जवाहरलाल ने उसके लिए दोहरी नीति बनाई। एक ओर तो पाकिस्तानी क्षेत्र के हिंदुओं के लिए। दूसरे भारत के हिस्से के मुसलमानों के लिए। गांधी जी सपना ले रहे थे उजड़े हुए लोगों को वापस बसाने का। परंतु वह सपना उनके साथ ही समाप्त हो गया। जवाहरलाल ने अलग नीति से काम किया। पाकिस्तान से हिंदुओं को भारत लाने का

प्रबंध किया । वहां से भारत आने वालों को यहां बसाने की विशाल योजना बनाई ।

इसमें संदेह नहीं कि हजारों हिंदू परिवार बचाए नहीं जा सके । परंतु मानना पड़ेगा कि करोड़ों हिंदुओं को यहां बसाया गया । उनको नए देश में नया जीवन शुरू करने की सुविधाएं मिल गईं । नीति कितनी सफल रही उसका ठोस प्रमाण सामने है । उस समय जो हिंदू आए थे, शरणार्थी कहलाते थे । आज भारत में कोई शरणार्थी नहीं । सब यहां के जीवन में रच बस गए हैं ।

पाकिस्तान के हालात इस सफलता को और भी उजागर करते हैं । भारत से जो मुसलमान पाकिस्तान गए, मुहाजिर कहलाते थे । वह आधी सदी बीतने के बाद भी मुहाजिर ही हैं ।

भारत में अधिकतर मुसलमान वह थे जो गरीब थे । मुस्लिम लीग के समर्थक बड़े बड़े जमींदार थे । या फिर सरकारी नौकरियों में थे । वही लोग पाकिस्तान जाना चाहते थे । गरीब लोग तो मजबूरी में घर बार छोड़ रहे थे । उनको मारने काटने से हिंदुओं की रक्षा तो नहीं होती थी । भारत के कोने कोने में दंगे जरूर फैल जाते । अंग्रेजों के जाने पर दोनों संप्रदायों में मित्रता की संभावना खत्म हो जाती । भारत पाकिस्तान सहयोग की कोशिशें भी बेकार हो जातीं । हमेशा के लिए बंटवारा और टकराव दोनों का भाग्य बन जाता । गरीबी और पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष पीछे पड़ जाता ।

जवाहरलाल की नीति का आधार यही समझदारी थी । इसमें उनको गांधी जी का पूरा समर्थन मिला । गांधी जी बंटवारे से बहुत दुखी थे । हिंसा ने उनके दुख को और भी बढ़ा दिया था । उन्होंने अपना पूरा ध्यान और शक्ति शांति स्थापित करने के लिए लगा रखी थी । 1946 में कलकत्ता इस प्रकोप का शिकार हुआ । वहां शांति बनाकर वह पूर्वी

बंगाल गए। आजादी आ रही थी तो वह नोआखाली में थे। वहां के हिंदुओं की रक्षा के लिए। भारत में हालात बिगड़ने लगे तो वहां से आ गए।

शांति बनाए रखने में गांधी जी जवाहरलाल का सहारा थे। जवाहरलाल ने भी उनको पूरा पूरा सहयोग दिया। दोनों शरणार्थियों के पास जाते। उनके आंसू पोंछते। नया जीवन शुरू करने के लिए उनमें साहस भरते। उसी तरह मुसलमानों को भी धीरज बंधाते।

लेकिन हिंसा रुक नहीं रही थी। गांधी जी ने जनवरी 1948 में आमरण व्रत रख लिया। जवाहरलाल के लिए यह सहन करना कठिन हो रहा था। उन्होंने भी अनशन कर दिया। गांधी जी के अनुरोध करने पर ही अन्न-जल को हाथ लगाया।

गांधी जी के अनशन से चारों ओर खलबली मच गई। सांप्रदायिक हिंदू उनसे नाराज हुए। परंतु देश की अधिकतर जनता उनके हक में सड़कों पर आने लगी। शांति की कोशिशों को बल मिला। सभी पक्षों के नेताओं ने शांति बनाए रखने का प्रण किया।

भारत सरकार को बंटवारे के बाद पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये देना था। वह देना रोक दिया गया था। गांधी जी को यह अच्छा नहीं लगा। इससे भारत पाकिस्तान संबंध सुधारने में बाधा पड़ जाती। गांधी जी दिल्ली में शांति बनाकर उस काम में लगना चाहते थे। सरकार ने उनका अनुरोध मानकर वह रुपया पाकिस्तान को देने का निर्णय कर लिया।

कट्टरपंथी हिंदू संस्थाओं के लोग गांधी जी के खिलाफ थे। अब तो वह उनके शत्रु हो गए। एक शाम उनकी प्रार्थना सभा में बम फेंका गया। सरकार को उनकी सुरक्षा की चिंता हुई। गांधी जी ने पुलिस की सुरक्षा लेने से इंकार कर दिया। उनको भगवान पर विश्वास था। जब तक

भगवान उनसे काम लेना चाहेगा। उनकी रक्षा करेगा। परंतु कुछ दिनों बाद एक कट्टरपंथी ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी।

भारतवासियों के लिए इससे गहरी चोट नहीं हो सकती थी। जवाहरलाल के लिए तो दुनिया अंधेरी हो गई। वह बच्चों की तरह फूट फूट कर रोने लगे। गांधी जी के साथ उनका आत्मा का संबंध था। उन्होंने हर मोड़ पर उनका मार्गदर्शन किया था।

गांधीजी की हत्या से देश का वातावरण एकदम बदल गया। उनसे अधिक महान हिंदू कौन हो सकता है? उनसे बड़ा देश का हितैषी नहीं हो सकता था। केवल हिंदुओं के लिए नहीं मानव मात्र के देवता थे वह। उनके विरोधियों का जो भी असर था काफूर हो गया। समाज का क्रोध उनकी ओर मुड़ गया। सांप्रदायिक संगठनों पर हमले होने लगे।

जवाहरलाल सांप्रदायिक विचारों के विरोधी थे। परंतु विरोधियों के खिलाफ ऐसी हिंसा भी उनको पसंद नहीं थी। सरकार ने उस हिंसा को रोका। जिन लोगों पर हत्या का संदेह था उनको पकड़ लिया गया। हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर पाबंदी लगा दी गई। उससे पहले उन लोगों पर दंगे भड़काने के भी आरोप थे। लेकिन सरकार पाबंदी की बजाय समझाने बुझाने की नीति अपना रही थी। गांधी हत्या के बाद विचार बदल गए। पाबंदी तब हटाई गई जब इन संगठनों ने राजनीति छोड़ने का वचन दिया।

सांप्रदायिक दलों को राजनीति से दूर रखा जाए। संविधान सभा में भी प्रस्ताव लाया गया। जिसके सदस्य एक ही संप्रदाय के हों उसे सांप्रदायिक माना जाए। वे भी सांप्रदायिक माने जाएं जो धर्म के नाम पर राजनीति करें। जवाहरलाल ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया। फिर लगा कि कोई दल ऐसा नहीं करेगा। इसलिए पाबंदी लगाना उचित नहीं।

जवाहरलाल विचारों की स्वतंत्रता के समर्थक थे । उनको जनता की समझदारी पर भी बहुत भरोसा था । वह गलत विचार का विरोध विचार द्वारा करने को अधिक ठीक समझते थे ।

आजाद भारत की एकता को एक और भी खतरा था । देश भर में सैकड़ों छोटे बड़े राज थे । उनमें से कई अपने को अलग आजाद राज घोषित करना चाहते थे । अंग्रेजी शासन उनका रक्षक था । अब भी बरतानिया की शह उनको मिल रही थी । यदि वह अपने इरादे पूरे कर लेते तो देश कई टुकड़ों में बंट जाता । इस खतरे से बचने का काम सरदार पटेल को दिया गया । उन्होंने देसी राज्यों के नरेशों से बातचीत करके उन सबको भारत में शामिल कर लिया । केवल जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर को छोड़कर ।

जवाहरलाल सभी देसी राज्यों की प्रजा के आंदोलन से जुड़े रहे थे । आजादी की लड़ाई के चलते वह देशव्यापी प्रजा संगठन के अध्यक्ष थे । वह वहां भी लोकतंत्र के पक्ष में थे । कांग्रेस भी उस विचार से सहमत थी । आजादी के बाद वहां की प्रजा को निर्णय करना था । प्रजा सब स्थानों पर भारत में शामिल होने के हक में थी । केवल नरेश ही खिलाफ थे । वह अपने निजी हितों की रक्षा चाहते थे । सरदार पटेल ने उनके हितों पर चोट नहीं लगाई । उनके सम्मान की भी रक्षा की । इस तरह बिना शक्ति प्रयोग किए सब मिल गए । इन तीनों राज्यों को छोड़कर ।

इन तीनों नरेशों ने प्रजा की बात अनसुनी कर दी । तीनों राज्यों में प्रजा के आंदोलन उठ खड़े हुए। जूनागढ़ का नवाब तो भागकर पाकिस्तान चला गया । हैदराबाद के निजाम ने आंदोलन को दबाने की कोशिश की । इसके लिए सांप्रदायिकता का भी सहारा लिया । निजाम को विदेशी समर्थन का भी भरोसा था । पाकिस्तान तो उसके पक्ष में आवाज उठा रहा था । कुछ दूसरे देशों ने निजाम की सहायता के लिए

हथियार भी भेजे। भारत सरकार पर कूटनीतिक दबाव भी डालने की कोशिश की। भारत सरकार ने प्रजा के समर्थन में सेना हैदराबाद भेजी। वहां की प्रजा निजाम की सेना के खिलाफ लड़ रही थी। जन समर्थन के बिना वह सेना भारतीय सेना के सामने कैसे टिकती। निजाम को हथियार डालने पड़े।

कश्मीर का मामला अधिक टेढ़ा था। अन्य सभी राज्य भारत की सीमा के अंदर थे। कश्मीर भारत और पाकिस्तान दोनों की सीमाओं पर था। वहां की आबादी का बड़ा भाग इस्लाम धर्म को मानता था। इस आधार पर पाकिस्तान उसे अपने साथ मिलाना चाहता था। भारत को यह दलील स्वीकार नहीं थी। वह वहां की प्रजा द्वारा निर्णय के पक्ष में था। महाराजा हिंदू था। भारत की ओर से गांधी जी ने उसको समझाया कि प्रजा की राय लो। महाराजा ने निर्णय करने में देर कर दी। प्रजा के नेता शेख अब्दुल्ला वहां लोकतंत्र के लिए लड़ रहे थे। महाराजा की उनके साथ सीधी टक्कर थी। वह उनके साथ समझौता नहीं करना चाहते थे।

इस बीच पाकिस्तान ने बल प्रयोग से कश्मीर लेना चाहा। सीमाप्रांत के पठान कबीलों से हमला करवा दिया। उनको हर तरह के हथियार दिए। फिर सेना भेजकर उनकी सहायता की। कश्मीर की सेना उनके सामने ठहर नहीं सकती थी। महाराजा ने भारत से सहायता मांगी। सेना भेजने को कहा। भारत अपनी सीमा के बाहर सेना भेजना नहीं चाहता था। तब महाराजा ने भारत में शामिल होने का प्रस्ताव किया। जवाहरलाल ने वह तब स्वीकार किया जब महाराजा ने शेख अब्दुल्ला से समझौता किया।

भारत की सेना कश्मीर गई। पाकिस्तान की ओर से हमलावर पीछे हटने लगे। कश्मीर की प्रजा ने भारत की सेना का साथ दिया। वह लोग

कभी भी पाकिस्तान के पक्ष में नहीं थे। अब अपने झुकाव का ठोस प्रमाण दिया। उन लोगों में हिंदू-मुसलमानों का भेद भी कम था। धार्मिक कट्टरपन नहीं था। हमले का मुकाबला हिंदू-मुसलमानों ने मिलकर किया। उस समय भारत और पाकिस्तान में दंगे हो रहे थे। कश्मीर में संप्रदायों में सद्भाव था। अच्छा मेलजोल, भाईचारा था। गांधी जी को इससे बहुत खुशी हुई। उन्होंने कश्मीर को अंधेरे में रोशनी की किरण कहा। वहां की सहायता के लिए सेना भेजने का भी समर्थन किया।

भारत की सेना हमलावरों को खदेड़ सकती थी। परंतु एक और खतरा पैदा हो गया। अभी तक भारत और पाकिस्तान की सेनाओं की कमान अंग्रेज कर रहे थे। उनके मन का झुकाव पाकिस्तान के पक्ष में था। कश्मीर के कुछ भाग में अंग्रेजों के अड्डे थे। वह नहीं चाहते थे उनपर भारत का अधिकार हो। भारत उनके अड्डे उठवा देता। पाकिस्तान उनको हर सुविधा देने को तैयार था। ऐसे में बरतानिया पाकिस्तान की सैनिक सहायता करता। लड़ाई लंबी हो जाती। दोनों गरीब देशों के साधन बर्बाद होते। भारत को विकास अधिक प्रिय था। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ में हमला रोकने के लिए शिकायत की।

इस तरह जवाहरलाल के शासन ने विघटन को रोका। भारत-पाकिस्तान विभाजन तो रोका नहीं जा सका था। शेष भारत की एकता मजबूत कर ली। आजाद भारत का जो विस्तार था उतना विस्तार पहले किसी राज्य का नहीं था। न किसी चक्रवर्ती राजा का, न मुगलों का, न अंग्रेजों का। अनेक धर्मों, जातियों वाले देश को एक करने के लिए विशाल हृदय चाहिए। दूर तक देखने वाली बुद्धि चाहिए। जवाहरलाल ने इसका परिचय दिया।

इससे भी बड़ा कमाल दिखाया लोकतंत्रीय ढांचा बनाकर। जिन देशों में लोकतंत्र बना था, वहां सैकड़ों वर्ष संघर्ष हुआ था। जवाहरलाल

ने लंबी छलांग लगाई । आजाद होने के तुरंत बाद सब देशवासियों को शासन में भागीदार बनाया । जवाहरलाल की देख रेख में शासन का ढांचा, संविधान, बनाया गया । संविधान बनाने वाली सभा में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि थे । संविधान का बाहरी आकार तो वही था जो अंग्रेजों ने 1935 में बनाया था । परंतु इसके अंदर वह सब आदर्श शामिल कर दिए गए जो आजादी के संघर्ष का सपना थे ।

इस संविधान की प्रमुख विशेषता थी जनता की सत्ता । शासन की शक्ति का स्रोत भारत की जनता को माना गया । भगवान, देवता या किसी व्यक्ति को नहीं । संविधान का पहला ही वाक्य इसका सूचक है । उसके अनुसार संविधान भारत की जनता ने अपने लिए बनाया है । उसके बदलने, सुधारने, लागू करने के सब अधिकार जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में दिए गए ।

जवाहरलाल के विचार में आजादी का अर्थ ही जनता का राज था । शासन जनता की इच्छा से चले यह उनका विश्वास था । जनता की इच्छा चुने हुए प्रतिनिधि ही बता सकते हैं। इसलिए जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की लोक सभा बनाना तय हुआ । देश के विभिन्न राज्यों के लिए विधान सभाएं बनाई गईं । प्रतिनिधि चुनने के लिए चुनाव आयोग का गठन हुआ । देश को चुनाव क्षेत्रों में बांटा गया । लोक सभा के चुनाव क्षेत्र बड़े बड़े और विधान सभाओं के छोटे बने । प्रतिनिधि चुनने का हक 25 वर्ष और उसके ऊपर की आयु के सब लोगों को दे दिया गया । उसे बालिग मताधिकार कहते हैं । (अब मताधिकार की आयु घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है) ।

शासन के साथ जनता का तालमेल जनता की भाषा में ही अच्छा हो सकता है । इसलिए भारत की राज भाषा हिंदी बना दी गई । जवाहरलाल हिंदी की बजाए हिंदुस्तानी चाहते थे । लेकिन संविधान में बहुमत हिंदी

के पक्ष में था।

देश के सब भागों में हिंदी नहीं बोली जाती। इसलिए भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हुआ। हरेक को अपने क्षेत्र की भाषा में काम करने की छूट मिली। एक-दूसरे तथा केंद्र के साथ हिंदी और अंग्रेजी दोनों के प्रयोग की सुविधा रही। अंग्रेजी इसलिए कि कई वर्षों तक शासन की भाषा रही थी। सारे भारत के कर्मचारी उसमें काम करते रहे थे। वह शासन और उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में भारतीय भाषा बन गई थी। गैर हिंदी क्षेत्रों को इस सुविधा से बराबरी का अहसास हुआ।

स्वाधीनता, समता और न्याय शासन के ढांचे का मूलतंत्र बने। अंग्रेजी राज के दिनों में धर्म के नाम पर भेदभाव बढ़ गया था। इसलिए धर्म में आस्था की आजादी का प्रबंध किया गया। धर्म को नकारा नहीं गया। धर्म को राजनीतिक विषय बनाने का निषेध किया गया। इसी को धर्मनिरपेक्षता कहा जाता है। इसका अर्थ है धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं होगा। आर्थिक अवसर, स्वास्थ्य, रक्षा, जान माल की सुरक्षा और शिक्षा पाने में ऐसा भेदभाव नहीं बरता जा सकता। प्रतिनिधि चुनने के लिए अलग अलग धर्म मानने वालों के लिए अलग चुनाव क्षेत्र नहीं बने। अंग्रेजों ने ऐसा कर रखा था।

देश के लंबे इतिहास में समता सदा नहीं रही। कुछ समता विरोधी परंपराएं भी बन चुकी थीं। जैसे छुआछूत का चलन। हरिजनों और आदिवासियों को हजारों वर्ष से शिक्षा और शासन से दूर रखा गया। कृषि, व्यापार, उद्योग आदि में उनका स्थान नहीं रहा। इसलिए वे गरीब भी रहे। अंग्रेजी राज में प्रतिनिधि चुनने का हक भी उनको नहीं मिला। इसलिए उनको संविधान में समान अधिकार देना काफी नहीं था। उनको ऊपर उठाने और भागीदार बनाने के लिए विशेष सुविधाएं दी गईं। नौकरी और शिक्षा के लिए स्थान आरक्षित हुए। उनके लिए चुनाव क्षेत्र

भी अलग से तय हुए । वहां से केवल हरिजन या आदिवासी ही प्रतिनिधि हो सकते थे । हां, समर्थन क्षेत्र के सभी लोगों का प्राप्त करना होता है । इससे अन्य वर्गों से उनकी दूरी कम होती है ।

समाज में समता बढ़ाने के लिए और भी कदम उठाए गए । हरिजनों के अलावा और भी जातियां पिछड़ी हुई थीं । उनके नियम भी तय किए गए । आवश्यकता पड़ी तो उनके लिए विशेष सुविधाओं का प्रावधान भी किया गया । नौकरियों तथा शिक्षा के क्षेत्र में उनको आरक्षण दिया गया ।

महिलाओं को समान अधिकार देने की ओर भी ध्यान दिया गया । सामाजिक परंपराएं उनको पुरुषों के बराबर नहीं मानती थीं । उनमें शिक्षा का प्रसार कम था । परिवार के जीवन में भी उनका दर्जा नीचा था । पुरुष एक से अधिक विवाह कर सकते थे । पत्नी को छोड़ भी सकते थे । परिवार की संपत्ति पाने का अधिकार भी उनको नहीं था । इस तरह महिला-पुरुष असमानता गहरी हो गई थी ।

जवाहरलाल ने महिलाओं को अधिकार देने के लिए कानून बनवाए । विषमता सभी समाजों में थी । सुधार का काम हिंदुओं से शुरू किया गया । मुसलमानों, ईसाइयों, आदिवासियों पर सुधार के कानून लागू नहीं हुए । कारण कि विवाह आदि के नियम धार्मिक आस्थाओं से जुड़े थे । सबके लिए एक जैसे कानून बनाने का आदर्श तो रखा । परंतु ऐसा कानून बनाना आसान नहीं था । आज भी आसान नहीं । ऐसे कानून की कल्पना भी कठिन है जो सब धर्मों को कबूल हो सके । इसलिए सभी धर्मों पर छोड़ दिया गया कि अपने अपने कानूनों में सुधार करें ।

इस प्रकार जवाहरलाल ने देश में एकता और समता की बुनियाद डाली । अच्छी और स्थायी राजनीति के लिए रास्ता साफ किया । इसके बिना विकास का मार्ग रुका रहता ।

आंसू नहीं आशा की चमक

जवाहरलाल ने सुख के वातावरण में आंखें खोली थीं। माता पिता ने दुख को उनके पास नहीं आने दिया था। घर से बाहर कदम रखा तो उनको दुख के दर्शन हुए। असली भारत में सुख कम दुख अधिक था। गरीबी थी, बीमारी थी, अशिक्षा थी, बेकारी और शोषण था। उस निराशा भरे जीवन में उनको आशा भी दिखाई दी। वह थी लोगों में संघर्ष की शक्ति। दुख को सुख में बदलने की चाह।

जीवन की इस हकीकत का परिचय उनको गांधी जी ने दिया था। गांधी जी को दुखों के घेरे में जी रही जनता पर विश्वास था। उन्होंने आजादी के संघर्ष में उनकी शक्ति पर भरोसा रखा था। अपने साथियों से कहा था उनके बीच में जाओ। उनको पहचाने बिना आजादी की बातें बेकार हैं। गांधी जी के लिए उनके दुख को सुख में बदलने का नाम ही आजादी था। वह किसी आंख में आंसू देखना नहीं चाहते थे।

जवाहरलाल प्रधानमंत्री बने तो यह सब याद आया। शपथ लेते समय इसको दुहराया। भारतवासियों की आंखों के आंसू चुनने का संकल्प सामने आया। शक्ति भर गांधी जी के उस सपने को पूरा करने का संकल्प। आंसुओं को मुस्कान, निराशा को आशा में बदलने का संकल्प। काम आसान नहीं था। परंतु उस दिशा में कदम तो बढ़ाए जा सकते थे। यही तो होगा आजादी का सही अर्थ।

केवल सत्ता पाने के लिए संघर्ष करने वालों ने ऐसा नहीं सोचा था। उनकी राजनीति ने जनता में फूट डाली। धर्म के नाम पर लोगों में संदेह

और घृणा भर दी । वह सच्ची आजादी के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी । उसी का परिणाम था देश का बंटवारा । उससे बाधाएं और बढ़ गईं । आजाद भारत के नेताओं का पहला काम उनसे निपटने का था ।

बंटवारे ने बहुत-सी उलझनें पैदा कर दी थीं । उनसे छुट्टी पाते ही जवाहरलाल ने शासन का ध्यान आर्थिक विकास की ओर मोड़ा । उन्होंने एक पत्र सरदार पटेल को लिखा । उसमें अपनी चिंता बतलाई, "हमारे सामने बहुत से काम हैं । उनमें सबसे अधिक जरूरी है आर्थिक सवाल । आर्थिक जीवन बदलना बुनियादी बात है । इस सवाल का हल नहीं ढूंढ़ा तो देश टूट जाएगा ।"

इसके लिए वह समाजवादी मार्ग पर चलना चाहते थे । वह अपने आप को समाजवादी कहते थे । समाजवाद के साथ साथ जवाहरलाल लोकतंत्र में भी विश्वास करते थे ।

उनके विचारों का दो पक्षों से विरोध हुआ । एक तो उस पक्ष से जो लोकतंत्र के मानने वालों का था । दूसरे समाजवादी सिद्धांत से बंधे पक्ष से । पहला पक्ष समाज में न्याय और समता को गौण समझता था । केवल उद्योग और खेती की उपज बढ़ाना काफी समझता था । उनके विचार में पूंजीपति और बड़े जमींदार सब कर सकते हैं । उनपर कोई अंकुश नहीं होना चाहिए । क्या पैदा किया जाए और कितना, यह उनकी इच्छा पर छोड़ देना चाहिए । जवाहरलाल ऐसा नहीं सोचते थे । वे लोग केवल अपने लाभ और सुख की सोचेंगे । समाज का हित सामने नहीं रखेंगे । विकास का लाभ सब तक पहुंचाने की चिंता उनको नहीं होगी । इसलिए शासन को विकास की योजना बनाने का काम अपने हाथ में लेना चाहिए ।

दूसरा पक्ष चाहता था विकास का काम शासन ही करे । पैदावार के सब साधन अपने हाथ में ले ले । उसके लिए बल प्रयोग से भी संकोच

न किया जाए। यदि विरोध हो तो दबा दिया जाए। समझाने में समय नष्ट न किया जाए। यह सोच लोकतंत्र के खिलाफ थी। लोकतंत्र में सबके विचारों का आदर किया जाता है। समाज के किसी भी वर्ग के विचारों को दबाना उचित नहीं।

जवाहरलाल ने इन दोनों पक्षों के बीच का मार्ग निकाला। बल प्रयोग की बजाय समझा बुझाकर आगे बढ़ने की नीति अपनाई। भूमि सुधार करके खेती की भूमि छोटे किसानों में बांटी गई। जमींदारों के साथ भी अन्याय नहीं किया। उनसे लेकर जो भूमि बांटी गई उसका उचित दाम दिया। विकास के दूसरे कदम भी ऐसे ही उठाए। किसी वर्ग को शिकायत का अवसर नहीं दिया।

जवाहरलाल की सोच संविधान के चौथे भाग में दिखाई देती है। उसमें आर्थिक नीति की दिशा इस प्रकार बताई गई है –

दोनों पक्षों के कट्टरपंथी अलग हो गए। जवाहरलाल ने 1950 में योजना आयोग का गठन किया। आर्थिक विकास कैसे और किस दिशा में हो आयोग को तय करना था। उस समय के वित्त मंत्री जॉन मथाई को वह अच्छा नहीं लगा। वह निजी उद्योगों को खुली छूट देने के पक्ष में थे।

वह मंत्रिमंडल से अलग हो गए। उधर समाजवादी लोगों को धीमी गति से संतोष नहीं था। वह भी विरोध करने लगे।

जवाहरलाल को अपने विचार और तरीके पर भरोसा था। यह भी विश्वास था कि जनता उनके मार्ग को पसंद करेगी। विरोधियों के तर्क कमजोर थे। वह अपनी राह पर चलते रहे। पांच पांच वर्ष की योजनाओं का क्रम आरंभ किया।

पहली योजना में बहुत नयी बातें नहीं डालीं। उस समय जो विचार चल रहे थे उनको ही इकट्ठा किया। उन सबका सबंध तुरंत सवालों के

साथ था। लोगों को उन्हें समझाने में कठिनाई नहीं हुई।1951में उस योजना का रूप सामने आया। चारों ओर से उसका स्वागत हुआ। उसके बाद चुनाव हुए तो कांग्रेस को भारी सफलता मिली। जनता ने योजना के लिए सहमति दे दी।

जवाहरलाल ने उस योजना के कुछ पहलुओं पर अधिक ध्यान दिया। उन पहलुओं पर जिनका सीधा संबंध सामान्य जीवन से था। बड़े उद्योगों की बजाय घरेलू उद्योगों को बढ़ावा दिया। सामूहिक विकास के केंद्रों का जाल बिछाना शुरू किया। उन केंद्रों में किसानों को उपज बढ़ाने के उपाय समझाए गए। अच्छे बीज और खाद के उपयोग किसानों को समझाए गए। इससे लोगों का अपने आप पर भरोसा बढ़ा। बहुत से लोगों को रोजगार मिला। देहात की हालत सुधरने लगी। ग्रामीण भारत में नए सुखी जीवन की आशा जागी।

इसके साथ साथ जनता को समझाने का काम किया। योजना पर बहस केवल संसद में नहीं हुई। देश भर में योजना मंच बनाए गए। उनमें लोगों ने अपने विचार रखे। इस प्रकार जवाहरलाल की सोच लगभग सारे देश की सोच बन गई।

पहली योजना की सबसे बड़ी सफलता थी, जनता का योजना पर भरोसा। अब जवाहरलाल ने समाजवादी लक्ष्य की ओर बढ़ना आरंभ किया। समाजवादी रीति पर चलना कांग्रेस का ध्येय बना दिया। जवाहरलाल का समाजवाद न किताबी था, न किसी की नकल। शास्त्र से बंधने की बजाय वह जीवन की हकीकत से जुड़ा हुआ था। जवाहरलाल नीति की परख जन-जीवन पर उसके प्रभाव से करते थे। वह कोई सिद्धांत नहीं चाहते थे। अपनी अभिलाषा उन्होंने इस प्रकार व्यक्त की, "जब तक इस देश के हर नर, नारी और बालक की कम से कम आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं, जब तक सबके साथ न्याय नहीं होता, मुझे चैन नहीं आएगा।"

दूसरी योजना पहली से बड़ी थी। उसके द्वारा आर्थिक ढांचे में मूल बदलाव आता था। उद्योगों को तेजी से बढ़ाने का कार्यक्रम था। बड़े बड़े नए उद्योग सरकार को लगाने थे। उन पर विशाल धनराशि लगने वाली थी। कुछ उद्योगपतियों को चिंता हुई। सरकार उद्योग चलाएगी तो उनका क्या होगा? बहस छिड़ गई। उद्योग निजी क्षेत्र में हो या सरकारी क्षेत्र में, उद्योग बढ़ाना चाहिए तभी उपज बढ़ेगी। तभी लोगों को रोजगार मिलेगा। जीवन में सुख का संचार संभव होगा।

दूसरी योजना में बड़े बड़े उद्योग शुरू करने का प्रस्ताव था। इसमें मशीनें, बिजली, खाद, तेल, इस्पात आदि के कारखाने खोलने का निर्णय हुआ। आने जाने के साधन, औषधियां तथा हथियार आदि बनाने का काम भी था। कृषि की सहायता के लिए मशीनों के कारखाने बनने थे।

सिंचाई के लिए नदियों पर बांध बनाने की योजना हुई। इन सब पर भारी धनराशि लगाने की आवश्यकता थी। आधुनिक तकनीक विकसित करने की आवश्यकता थी। ये सभी साधन उस समय निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों के बस में नहीं थे। निजी क्षेत्र को भी इन बड़े उद्योगों से सहायता मिलती थी। उनको कच्चा माल मंगवाने की आवश्यकता थी। इसके लिए भी धन सरकार को जुटाना था। धीरे धीरे सबको सरकारी क्षेत्र का महत्व समझ में आ गया। दोनों क्षेत्रों के सहयोग से ही विकास होगा। इस प्रकार वह नीति चालू हुई जिसे मिली जुली आर्थिक नीति कहा जा सकता है।

कृषि के क्षेत्र में जमींदारी प्रथा समाप्त की गई। बड़े बड़े जागीरदारों, जमींदारों की भूमि छोटे किसानों में बांटी गई। छोटी छोटी खेतियों को आधुनिक ढंग से उपजाऊ बनाने के लिए सहकारिता को बढ़ावा दिया गया।

देश को दूसरों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। यदि आर्थिक निर्भरता बनी रहे तो राजनीतिक आजादी खतरे में रहती है। जवाहरलाल आत्मनिर्भरता को आजादी की बुनियाद मानते थे। इसलिए विदेश से चीजें मंगवाना ठीक नहीं समझते थे। गांधी जी ने भी स्वदेशी का आंदोलन इसीलिए चलाया था। आजादी का संघर्ष चल रहा था तो बड़े मशीनी उद्योग विदेशों पर निर्भर थे। मशीनें बाहर से मंगवाई जाती थीं। उसके लिए कच्चा माल भी बाहर से आता था। देश का धन बाहर जाता था। इसलिए तब स्वदेशी का अर्थ मात्र खादी हो गया था। उस समय आत्मनिर्भर होना और रोजगार का विस्तार खादी जैसे उद्योग से ही संभव था।

आजादी आने पर जवाहरलाल ने स्वदेशी को नया रूप दिया। रोजगार के विस्तार के लिए घरेलू उद्योगों के साथ लघु उद्योग शुरू किए। देश के कई भागों में उद्योग क्षेत्र बनाए। भारत के कुल उद्योग का बड़ा

भाग इस क्षेत्र में आ गया। पूंजी लाखों के हाथों में गई। पूंजी की इजारेदारी कमजोर हुई। छोटे उद्योगों में मजदूरों की भी अधिक आवश्यकता थी। रोजगर पाने के नए रास्ते खुले।

विकास तेज करने में शिक्षा और विज्ञान का योगदान जरूरी है। भारत में शिक्षा की कमी थी। विज्ञान की शिक्षा तो न होने जैसी थी। जवाहरलाल ने विज्ञान को बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दिया। विज्ञान और तकनीक का विभाग उन्होंने अपने हाथों में रखा। वैज्ञानिकों के सम्मेलनों में स्वयं जाते। भारत को उनका कैसा योगदान चाहिए उनको समझाते। विज्ञान और उद्योग में सहयोग बढ़ाने के लिए एक परिषद बनाई। देश के अलग अलग भागों में अनुसंधान केंद्र बनाए। देशवासियों के सुख के लिए कार्य करने में जुटे रहे।

विदेशी राज को भारत के विकास में कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने भारत को विज्ञान के प्रकाश से दूर ही रखा। लगभग दो सौ वर्षों के उस दौर में विज्ञान का अपार विकास हुआ था। नयी नयी मशीनें बनी थीं। उद्योग, कृषि, व्यापार, सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रों में विज्ञान ने क्रांति ला दी थी। भारत उस क्रांति से दूर रखा गया था। भारत ही नहीं सभी पराधीन देशों की यही हालत थी।

भारत तथा भारत जैसे देशों का भविष्य विज्ञान के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। आजाद देश के भविष्य का निर्माता इस तथ्य से आंखें बंद नहीं रख सकता। जवाहरलाल इसको भली भांति समझते थे। इसीलिए उन्होंने विज्ञान के विकास पर बल दिया। पहले हमारे देश में सूई तक विदेश से आती थी। आज भारत विकासशील देशों में विज्ञान और तकनीक में सबसे आगे है।

भविष्य के निर्माण में भावी पीढ़ी की भूमिका बड़ा महत्व रखती है। भौतिक वस्तुओं के साथ साथ मानव के विकास को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। अतः बच्चों की ओर ध्यान देने की विशेष

आवश्यकता होती है। उनके लिए बच्चों से प्यार देश से प्यार का अटूट अंग था। उनका जन्मदिन आज भी बाल दिवस के रूप में मनाया जाता है। वह बच्चों के बीच 'चाचा नेहरू' के नाम से जाने जाते हैं।

जवाहरलाल का देश प्रेम कोरी भावुकता नहीं थी। देशभक्ति केवल नारा नहीं था। देश प्रेम का अर्थ था देशवासियों से प्रेम। देशवासियों से प्रेम का अर्थ था देश का विकास। वह जीवन भर देश और देशवासियों की एकता और विकास में लगे रहे। उनके जीवन की अंतिम इच्छा भी यही थी कि उनकी राख देश के खेतों, पहाड़ों, और नदियों में प्रवाहित की जाए। इस प्रकार जवाहरलाल भारत के कण कण में समा गए। वह केवल प्रशासक नहीं थे। वह भारत के साथ एक हो गए थे। यही कारण है कि वह आज भी भारत की धड़कनों का अंग हैं।

ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर

विदेश नीति राष्ट्र की आजादी की पहचान होती है । भारत आजाद नहीं था तो इसकी अपनी कोई विदेश नीति नहीं थी । भारत का संबंध दूसरे देशों से क्या हो ? किससे मित्रता हो, किससे लड़ाई ? किसकी सहायता की जाए, किससे सहायता ली जाए ? इन सभी सवालों का जवाब विदेश नीति से होता है । और यह सब निर्णय भारत की ओर से लंदन में किए जाते थे । बरतानिया सरकार ने भारत को अपना अगला मोर्चा बना रखा था । वह भारत के जन धन के साधन अपना साम्राज्य फैलाने के लिए उपयोग करती थी । इस हालत को बदलना आजादी के संघर्ष का प्रमुख अंग था ।

जवाहरलाल इस मांग पर सबसे अधिक जोर देते थे । दूसरी लड़ाई में अंग्रेजों के साथ सहयोग की बात इसी विषय पर टूटी थी । अंग्रेजों ने भारत को लड़ाई में शामिल कर लिया था। इसके लिए भारत के प्रतिनिधियों की राय तक नहीं पूछी । इस कारण फासीवाद के विरोधी जवाहरलाल उनका साथ देने के विरोधी रहे ।

आज के युग में विदेश नीति राष्ट्रजीवन की प्रमुख जरूरत बन गई है । आने जाने के साधनों का विकास बहुत हो गया है । दूर मार शस्त्र बन चुके हैं । दुनिया के किसी भी कोने में होने वाली घटना सब पर प्रभाव डालती है । सारे संसार के लोगों का मरना जीना मानो एक हो गया है । जवाहरलाल ने इस बात को समझा था । वह आजादी के संघर्ष को एक

देश का नहीं सभी देशों का संघर्ष मानते थे । अपने संघर्ष का दूसरे देशों के साथ तालमेल बिठाने का प्रयास करते थे ।

जवाहरलाल ने अपने जीवन में दो लड़ाइयां देखी थीं । वह दोनों उससे पहले होने वाली सभी लड़ाइयों से भिन्न थीं । 19 वीं सदी तक लड़ाइयां दुनिया के दो चार देशों के बीच ही होती थीं । संसार के किसी एक क्षेत्र तक सीमित रहती थीं । बाकी संसार उनसे अछूता रहता था । प्रभाव होता तो भी बहुत कम । ऐसा जो दिखाई न दे । दूर की आग की आंच की तरह ।

परंतु इन दो लड़ाइयों ने सारे संसार को लपेट लिया था । संसार के सभी भागों तक इनकी लपटें पहुंचीं । कोई देश ही बचा होगा जिसके युवक इनका शिकार न हुए हों । पहले के इतिहास में हुई सभी लड़ाइयों में मरने वालों से अधिक इन दो में मारे गए ।

एक और भयंकर पहलू था । पहले लड़ाइयां लड़ाई के मैदान में ही होती थीं । ये लड़ाइयां उस सीमा को पार कर गईं । पूरे पूरे शहर, पूरे देश इनकी मार से नहीं बचे । आकाश से बम के गोले गिरते थे । कोई गोला नहीं देखता था सिपाही पर गिर रहा है या साधारण आदमी पर । बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री, पुरुष में भेद नहीं करता था । पहली लड़ाई में दूर मार तोपें, हवाई जहाज और बम आए । दूसरी में इससे अधिक तबाही का सामान था । हवाई जहाज पहले से तेज । उनके साथ विषैली गैस और अणुबम का प्रयोग । जंगलों और पहाड़ों में छुपकर भी इनसे बचाव नहीं था । जापान के दो शहरों नागासाकी और हिरोशिमा की तबाही ने दुनिया भर को हिलाकर रख दिया था ।

इन लड़ाइयों का प्रभाव लड़ाई के बाद भी रहता था । एक ओर बेसहारा विधवाओं, अनाथ बच्चों और बेसहारा बूढ़ों की व्यथा । दूसरी ओर आवश्यक वस्तुओं की कमी और महंगाई की मार पड़ती । घूसखोरी,

जमाखोरी और मुनाफाखोरी जीना और भी दूभर कर देती । समाज में नैतिकता का लोप होने लगा । मानव जाति से मानव सुलभ गुण गायब होने लगे । आपसी सहयोग के स्थान पर आपाधापी आ गई ।

जवाहरलाल को गांधी जी की अहिंसा नीति पसंद आई थी । उसमें संघर्ष था, तबाही नहीं थी । असहयोग होता था । किंतु सहयोग का द्वार खुला रहता था । विपक्षी से विरोध था घृणा नहीं । अपने अधिकार के लिए आग्रह था दूसरे का अधिकार छीनने का प्रयास नहीं । विरोधी का दमन नहीं, इसके सुधार का प्रयास था ।

लड़ाइयों की तबाही ने गांधी जी के मार्ग पर विश्वास और भी गहरा कर दिया । वही मार्ग संसार को नरसंहार से बचा सकता है । इसलिए जवाहरलाल ने उसके आधार पर विदेश नीति बनाई । उनके अपने विचार भी तो गांधी जी के विचारों के अनुकूल थे । गांधी जी की आत्मा की जो आवाज थी वही आवाज जवाहरलाल के तर्क की भी थी ।

गांधी जी कहते थे, "बुराई का विरोध करो, बुरे का नहीं ।" जवाहरलाल साम्राज्यवाद का विरोध करते थे । उन देशों और जातियों से घृणा नहीं करते थे जो दूसरों को गुलाम बनाती थीं । अंग्रेजी राज का विरोध किया, अंग्रेजों का नहीं । फासीवाद के खिलाफ संघर्ष किया । हिटलर या जर्मन जाति से घृणा नहीं । वैसे ही जैसे मुस्लिम लीग की हिंसा, घृणा और बंटवारे की नीति का विरोध किया । परंतु मुसलमानों को न्याय दिलाने से भी पीछे नहीं हटे ।

जवाहरलाल की इस सोच के अनेक प्रमाण हैं । जापान ने एशिया के देशों पर हमले किए तो उसका विरोध किया । लेकिन लड़ाई के बाद जापानियों पर होने वाले अन्याय का भी साथ नहीं दिया । चीन के आक्रमण की निंदा की । उसका प्रतिरोध भी किया । किंतु राष्ट्र संघ में उसके प्रवेश का समर्थन वापस नहीं लिया । भारत की आजादी के लिए

अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष किया। आजादी आने पर राष्ट्र मंडल में शामिल हुए और उसे बदला। उस का आधार सब देशों की समता बनाया। सदस्यों की आजादी पर कोई अंकुश नहीं रहने दिया। पाकिस्तान के आक्रमण के आगे झुके नहीं। पाकिस्तान के साथ सहयोग का द्वार भी बंद नहीं किया।

शासन हाथ में आते ही जवाहरलाल ने विदेश नीति की ओर ध्यान दिया। कुछ लोगों ने इस कारण उनकी आलोचना भी की। कहा, "अपना देश कठिनाइयों से घिरा है। यह दुनिया को सुधारने की सोच रहे हैं। पहले अपना घर सुधारते। उसके बाद दूसरे देशों की सोचते।"

जवाहरलाल की सोच अलग थी। वह अपने देश के हित को दुनिया के हित से अलग नहीं समझते थे। उनका विचार था, "भारत की आजादी दूसरे देशों के आजाद होने से मजबूत होगी। उसके बिना सदा खतरे में रहेगी। दुनिया में तनाव और संघर्ष का असर भारत पर भी पड़ेगा। उससे भारत के विकास में बाधा आएगी।"

दूसरी लड़ाई के बाद दुनिया दो गुटों में बंट गई थी। एक गुटों का नेता अमरीका था दूसरे का रूस। दोनों एक-दूसरे को मात देने की तैयारी में लगे थे। दूसरे देशों को अपने अपने गुट में घसीटने की कोशिश कर रहे थे। इसके लिए सैनिक और आर्थिक दबाव से काम लिया जा रहा था। गुट में शामिल होने वालों की आजादी सीमित हो जाती थी। उनको वही नीति अपनानी पड़ती थी जो गुट के नेता की होती। यह एक तरह से राष्ट्रीय स्वाधीनता पर हमला था। जवाहरलाल को यह स्वीकार नहीं था। उन्होंने भारत को दोनों गुटों से अलग रखा।

इस नीति को तटस्थ, निर्गुट या गुटनिरपेक्ष नाम दिया गया। इस नीति का अर्थ गलत भी समझा गया। गुटों के नेताओं ने इसकी निंदा की। इसको अनैतिक तक कहा। भारत में भी कुछ लोगों ने विरोध

किया । यह कहकर कि इसके कारण भारत अकेला रह जाएगा । दूसरों का सहयोग नहीं मिलेगा तो सुरक्षा तथा विकास में कठिनाई आएगी ।

जवाहरलाल ने समझाया, "हम दुनिया के झगड़ों से भाग नहीं रहे हैं । झगड़ों को निपटाने का प्रयास करेंगे । गुटबाजी से समस्या हल नहीं होती, बढ़ जाती है । मतभेद संघर्ष से नहीं समझाने बुझाने से दूर होते हैं । शांति, सुरक्षा और विकास टकराव से नहीं सहयोग से संभव होंगे । हम संघर्ष के स्थान पर सहयोग बढ़ाना चाहते हैं । न्याय की बात वह है जिससे राष्ट्रों की आजादी, समता, सहयोग और विकास को बढ़ावा मिले । एक-दूसरे का भय दूर हो । इससे संहार करने वाले शस्त्रों की दौड़ बंद होगी । उनपर धन और साधनों का बेकार विनाश होता है । वही साधन विकास के काम आ सकते हैं ।"

जवाहरलाल का विचार भारत का विचार था । भारत ने हमेशा सारे संसार को एक कुटुंब माना था । गांधी और टैगोर की यही कल्पना थी । वह भारत की आजादी को केवल भारतवासियों के लाभ के लिए नहीं चाहते थे । भारत की आजादी सब देशों की आजादी का हिस्सा मानते थे । आजादी, शांति और विकास को देशों की सीमाओं में नहीं बांटा जा सकता । सबकी सामूहिक भलाई में ही संसार के हर देश की भलाई है । यही भारत का संदेश था । आजाद भारत को अन्य देशों से मुकाबला नहीं सहयोग करना था । सबके अच्छे गुणों को मिलाकर इस धरती को स्वर्ग समान बनाना था ।

आजादी का संघर्ष करते समय यही बात कही जाती रही । किंतु इसका खुलकर वर्णन तब हुआ जब राजसत्ता अपने हाथ में आई । शासन हाथ में लेते ही जवाहरलाल ने पहला काम यही किया । दिल्ली में एशियाई देशों का सम्मेलन बुलाया । उसमें एशिया के उन नेताओं को बुलाया जो आजादी के लिए संघर्ष कर रहे थे । घोषणा की कि आजाद

देशों के आपसी संबंधों का रूप वह देश स्वयं तय करेंगे । कोई दूसरा तय नहीं करेगा । संघर्ष करने वालों का आपसी सहयोग हर संघर्ष को बल देगा । आजादी को मजबूत करने और जनता की भलाई की कुंजी भी सही सहयोग है ।

एशिया का सबसे बड़ा देश चीन है । भारत की आजादी के दो वर्ष बाद वहां क्रांति हुई । जवाहरलाल 1954 में चीन गए । वहां नेताओं से मिलकर एक घोषणा की । वह घोषणा आजाद विदेशी नीति का आधार है । उसको पंचशील कहते हैं । उसमें विभिन्न देशों के आपसी संबंध के पांच नियम हैं । यह नियम इस प्रकार थे –

1. एक-दूसरे की भू-सीमाओं तथा प्रभुसत्ता का आदर किया जाए ।
2. कोई देश दूसरे पर आक्रमण न करे ।
3. एक-दूसरे के भीतरी मामलों में दखल नहीं दिया जाए ।
4. एक-दूसरे को बराबर समझें और लाभ पहुंचाएं ।
5. पड़ोसी बनकर शांति के साथ रहें ।

जवाहरलाल की विदेश नीति का अगला बड़ा पड़ाव 1955 में आया । बांदुंग इंडोनेशिया का बड़ा शहर है । भारत ने उस देश को आजाद कराने में सहयोग दिया था । वहां एशिया और अफ्रीका दोनों महाद्वीपों के नेता बुलाए गए । उस सम्मेलन में जवाहरलाल ने विकास पर अधिक बल दिया । आर्थिक हालत नहीं बदलेगी तो आजादी अधूरी रहेगी । विकास की दो शर्तें हैं । एक तो संसार में शांति हो । दूसरे विकास चाहने वाले आपस में सहयोग करें ।

इन विचारों का नए आजाद होने वाले देशों पर गहरा प्रभाव पड़ा । उनके अधिक मुखर नेताओं ने उनसे बातचीत की । युगोस्लाविया के मार्शल टीटो और मिस्र के कर्नल नासिर ने सहयोग को आगे बढ़ाना चाहा । 1961 में गुटनिरपेक्ष आंदोलन की बुनियाद डाली गई । इस

आंदोलन की विचारधारा पर जवाहरलाल की गहरी छाप दिखाई देती है। गुटनिरपेक्षता का वही रूप है जो धर्मनिरपेक्षता का। गुटनिरपेक्षता दूसरे देशों के साथ संबंधों का आधार है। वैसे ही जैसे धर्मनिरपेक्षता दूसरा धर्म मानने वालों के साथ संबंधों का। जैसे भारत में धर्म की आजादी है, वैसे ही संसार के हर देश की विचारधारा का आदर आपसी संबंधों का आधार बना। पंचशील में भी यही भावना छिपी थी।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन में तय थी विचारधाराओं की आजादी। इसपर एक ही अंकुश लगा। विचार भेद का हल लड़ाई से नहीं होगा। यह सहयोग में बाधा नहीं बनेगा। यह भी तय हुआ कि सहयोग किसलिए किया जाएगा। इसके चार उद्देश्य तय किए गए। एक, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, दूसरा विश्व शांति, तीसरा शस्त्र भंडारों की समाप्ति और चौथे, विकास।

इन उद्देश्यों के अनुकूल काम करने वाली संस्थाएं और भी थीं। भारत उन सबके साथ सहयोग के पक्ष में था। जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, राष्ट्र मंडल या अफ्रीकी एकता संगठन। आजादी, शांति तथा विकास के कामों में इनका उपयोग संभव था। इनके साथ भारत पूरा सहयोग करता था।

किसी देश या संस्था की नीति इनके विपरीत होती तो उस नीति का विरोध किया जाता। परंतु उस देश का विरोध नहीं होता था। बरतानिया ने राष्ट्रों की आजादी छीनी थी। उसका विरोध किया। सहयोग के लिए राष्ट्र मंडल बना तो उसका साथ दिया। चीन के साथ मतभेद हुआ। परंतु चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल करने का विरोध नहीं किया।

इन सभी संस्थाओं को योगदान देने में भारत कभी पीछे नहीं रहा। आजादी और शांति के पक्ष में इनकी नीतियों को मोड़ दिया। सोवियत और अमरीकी गुटों के सशस्त्र टकराव को रोकने में जवाहरलाल का प्रमुख योगदान रहा। अणुबमों के प्रयोग बंद करवाने में भी उनका हाथ

था। उनके ही प्रयास आगे चलकर शस्त्रों की दौड़ में कमी का कारण बने।

जवाहरलाल ने पड़ोसियों के साथ सहयोग बढ़ाने की भी पूरी कोशिश की। सबसे पहला सवाल था पाकिस्तान का। पाकिस्तान बना तो उसका बरताव मित्रता का नहीं था। वहां हिंदुओं पर बहुत अत्याचार हुए। पाकिस्तान ने हमला करके कश्मीर हथियाना चाहा। इस कारण भारत में पाकिस्तान का विरोध बढ़ने लगा। कुछ लोगों ने बदला लेने की नीति अपनानी चाही। जवाहरलाल ने वैसा नहीं किया। पाकिस्तान को समझाने बुझाने की नीति अपनाई। सेना का उपयोग तब किया जब मजबूरी हुई।

इसी प्रकार चीन के आक्रमण का प्रतिकार तो किया। परंतु मित्रता के लिए द्वार खुले रखे। इन नीतियों का फल आज मिल रहा है। भारत-पाकिस्तान, भारत-चीन संबंध मधुर हो रहे हैं। सहयोग बढ़ रहा है।

विश्व राजनीति के बारे में भारत की नीति नयी थी। आरंभ में इसे ठीक से समझा नहीं गया। बहुत से संदेह प्रकट किए गए। विरोध भी हुए। लेकिन जवाहरलाल घबराए नहीं। अपने देशवासियों और अन्य देशों को समझाते रहे। समय लगा परंतु सबने समझा। संसार में दुख को कम करने, सुख को बढ़ाने का यही अच्छा मार्ग था। धीरे धीरे सभी उनकी सराहना करने लगे। भारत का स्वर विश्व की आजादी, सहयोग, शांति और विकास का स्वर बन गया। लोग जवाहरलाल को शांतिदूत कहने लगे। चाहे उनके समर्थक हों या उनके विरोधी, सभी उनको आधुनिक भारत का निर्माता मानते हैं।